वर्ग Prei-od	आणविक संख्या और एलिमेन्ट Atomic numder and name of element.		रासायनिक संकेत	अणु-कक्ष [पर्त्त-Layer-लेअर] में इलेक्ट्रान्स की संख्या Number of electrons in Layer. K	L	M	N	O	P	Q	भार
95	अमेरिकिअम्	Americium	Am	2	8	18	32	18+7	8	2	२४३
96	क्यूरिअम्	Curium	Cm	2	8	18	32	18+7	8-1	2	२४३
97	बरकैलिअम्	Berkelium	Bk	2	8	18	32	18+9	8-1	2	२४५
98	कैलिफोर्निअम्	Californium	Cf	2	8	18	32	18+10	8	2	२४६
99	ऐन्स्टीनिअम्—आइन्स्टीनिअम्	Einsteinium	En	2	8	18	32	18+11	8	2	२५४
100	फरमिअम्	Fermium	Fm	2	8	18	32	18+12	8	2	२५३
101	मैण्डैलेविअम्	Mendelevium	Mv	2	8	18	32	18+13	8	2	२५६
102	नोबैलिअम्	Nobelium	No	2	8	18	32	18+14	8	2	२५४
103	लॉरैन्शिअम्	Lawrencium	Lw	2	8	18	32	18+15	8	2	?

यह सूची N. GLINKA. General Chemistry पृष्ठ 154-156 के अनुसार प्रस्तुत कीगई है। यह ग्रन्थ सन् १९६० ईसवी में FOREIGN LANGUAGES PUBLISHING HOUSE, MOSCOW, से प्रकाशित हुआ है।

वैशेषिक का 'परम-अणु'

गत पंक्तियों में यह स्पष्ट किया, कि आधुनिक पदार्थ-विज्ञान के रसायन-शास्त्र द्वारा विवेच्य 'एक सौ तीन' प्रकार के अणु-तत्त्व [Element] स्वरूप से मूलतत्त्व नहीं हैं। प्रत्युत अन्य किन्हीं मूलतत्त्वों द्वारा सर्ग-रचना प्रारम्भ हो-जाने के अनन्तर आगे होनेवाली रचना के किन्हीं स्तरों पर इन 'ऐलीमैन्ट' नामक पदार्थों का क्रम आता है। यह सब रचना प्राकृतिक नियमों अथवा ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार हुआ करती है, या होती रहती है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार इन रचनाओं के आगे भी बराबर रचना का क्रम चलता रहता है, और यह क्रम प्रायः वहां तक चालू रहता है, जहां प्राणी अपने जीवन निर्वाह के लिये साधन प्राप्त करपाता है। इसमें ओषधि वनस्पति फल मूल आदि का तथा मानव द्वारा अपनी सुख-सुविधा के लिये निर्मित पदार्थों का समावेश है। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर आगे भी मानव द्वारा विविध रचना की कोई सीमा नहीं है।

इसी सन्दर्भ में विचारणीय है, वैशेषिकशास्त्र द्वारा प्रतिपादित अणु-तत्त्व जगत् का वास्तविक मूलकारण है, अथवा आधुनिक रसायनशास्त्र द्वारा विवेच्य ऐलीमैन्ट के समान यह भी सर्गरचना के निरन्तर चालू प्रक्रम में किसी अवान्तर या मध्यगत स्तर पर आत्मलाभ करता है? साथ में यह भी विचार्य है, कि सर्गरचना के मध्यगत किसी स्तर पर इसकी स्थिति मानने से वैशेषिक आचार्यों द्वारा 'अणु' का नित्य मानाजाना कैसे संगत कहाजायेगा?

इन दोनों बातों पर विवेचन के लिये प्रथम यह जान लेना आवश्यक है, कि वैशेषिक 'अणु' का स्वरूप क्या है? इसके स्वरूप को समझ लेने पर यह अधिक सुविधा के साथ जानाजासकेगा, कि इस 'अणु' का स्थान मूलकारण के रूप में है, अथवा सर्गरचना के किसी मध्यगत स्तर पर आता है।

वैशेषिक आचार्यों ने जगत् के कारणरूप में चार प्रकार के अणु स्वीकार किये हैं—पार्थिव, आप्य, तैजस, वायवीय। वैशेषिक के पारिभाषिक वर्गीकरण के अनुसार समस्त स्वीकृत पदार्थों में पृथिवी आदि चारों पदार्थ 'द्रव्य' हैं, इसलिये पृथिवी आदि के 'अणु' भी निश्चितरूप से द्रव्य हैं। पृथिवी आदि चार द्रव्य वही हैं, जिनको महाभूत के रूप में बाह्य इन्द्रियों द्वारा अनुभूत कियाजाता है, और

जिनका इन्हीं 'पृथिवी' आदि पदों द्वारा व्यवहार होता है। इनका सर्वान्तिम अतिसूक्ष्म स्तर 'अणु' है, जो अपने वर्ग के अनुसार 'पार्थिव अणु' आदि नामों से व्यवहृत होता है। इसका तात्पर्य हुआ—पृथिवी द्रव्य का जो सर्वान्तिम अतिसूक्ष्म स्तर है, वह 'पृथिवी–अणु' है। इसीप्रकार आप्य, तैजस और वायवीय अणु की स्थिति है।

वैशेषिक दृष्टि के अनुसार प्रत्येक वर्ग का 'अणु' आकार में अपने कलेवर की भावना से समान है, पर प्रत्येक वर्ग का 'अणु' अपने में समवेत विशेष गुणों के कारण अन्य वर्गीय अणु से अपने-आप को पृथक् रखता है। अपने वर्ग में भी एक अणु दूसरे अणु से भिन्न है, पृथक् है; इसके नियमन के लिये वैशेषिक आचार्यों ने प्रत्येक अणु में 'विशेष' नामक एक पदार्थ को समवेत कल्पना किया है, जो स्वरूप से ही अन्य सबसे भिन्न रहता हुआ स्वाश्रय अणु को अन्य अणु-तत्त्वों से पृथक् रखने में समर्थ होता है। 'विशेष' नामक पदार्थ के विषय में यहां कुछ विवेच्य नहीं, उसका विवेचन इसी परिशिष्ट में आगे कियागया है; यहां केवल अणु के स्तर को समझने के लिये उसमें समवेत विशेष गुणों के विषय में आवश्यक विवेचन अपेक्षित है।

'द्रव्य' और 'गुण' ये संज्ञा वैशेषिक शास्त्र में शास्त्रीय परिभाषा के अनुरूप हैं। इन संज्ञा-पदों से किन्हीं विशिष्ट पदार्थों का ग्रहण होता है। प्रथम कहागया, प्रत्येक वर्ग के अणु में अपने विशेषगुण समवेत रहते हैं।[1] उन विशेषगुणों के न्यूनाधिक रहने पर भी अणु के आकार प्रकार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता, यद्यपि द्रव्य के स्थूलरूप में आने पर उसके गुण स्ववर्गीय द्रव्यों से उसका अन्तर स्पष्ट कर देते हैं, पर अणुदशा में यह स्थिति नहीं रहती। गुणों के आधार पर वस्तु का यह भेद सार्वत्रिक नहीं होता। स्थूलदशा में जहां विभिन्नद्रव्यगत समान गुण दिखाई देते हैं, वहां उन द्रव्यों के परस्पर भेद को अभिव्यक्त करने के लिये उन-उन द्रव्यों के अपने समवायिकारण–अवयवों के भेद को ही निमित्त मानागया है। भेद का यह नियामक वैशेषिक दृष्टि से 'अणु' में संभव नहीं। क्योंकि 'अणु' किन्हीं अवयवों में समवेत नहीं होता, वह स्वयं केवल अवयव-मात्र है। ऐसी दशा में यह और भी गंभीरता के साथ विवेचनीय होजाता है, कि विभिन्न एवं न्यूनाधिक गुणों का आश्रय होते हुए भी प्रत्येक वर्ग का अणु आकार-प्रकार में समान कैसे रहता या मानाजाता है ?

---

१. किस द्रव्य में कितने गुण रहते हैं, तथा कौन-सा गुण कितने द्रव्यों में रहता है; इसके लिये देखें प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ ३२-३३।

वस्तुतः वैशेषिक अणु की यह स्थिति अनायास इस वैचारिक झुकाव की ओर बाधित करती है, कि यह 'अणु-तत्त्व' सर्वात्मना मूलकारण न होकर सर्गरचना के निरन्तर चालू प्रक्रम में कहीं मध्यगत स्तर पर अपना स्थान पाता है। जैसे आधुनिक रसायनशास्त्र के ऐलीमैन्ट का सर्गरचना के प्रक्रम में किसी मध्यगत स्तर पर स्थान है; ऐसे ही किसी स्तर पर वैशेषिक के अणु का स्थान है। रसायनशास्त्र अपने विवेच्यक्षेत्र में ऐलीमैन्ट को मूलतत्त्व मानकर आगे विवेचन प्रस्तुत करता है; ऐसे ही वैशेषिक सर्गरचना के किसी स्तर पर अभिव्यक्त हुए 'अणु' को मूल-तत्त्व स्वीकृत कर उससे आगे का विवेचन प्रस्तुत करता है, वह इस विचार की उपेक्षा करता है, कि 'अणु' की रचना कैसे होती है? कहां से होती है? अथवा होती भी है, या नहीं? यदि वह इसपर विचार करे, तो वह अपने विवेच्य-क्षेत्र की सीमा से बाहर चलाजाता है। इसीलिये उसने इसकी उपेक्षाकर 'अणु' को नित्य मान लिया है। वस्तुस्थिति में वह अणु कैसे बनता है, कहां से आता है? यह सब विवेचन करना दर्शन के अन्य क्षेत्र का कार्य है।

वैशेषिक 'अणु' की रचना—अब विचारना चाहिये, सर्गरचना की परम्परा में वैशेषिक अणु का स्थान रचना के मध्यगत किस स्तर पर है। 'मध्यगत' पद का तात्पर्य है—मूलतत्वों से रचना का क्रम प्रारम्भ होचुका है, प्राकृतिक व्यवस्थाओं के अनुसार वे तत्व अवस्थान्तरों में परिणत होते चले आरहे हैं। प्राणि-जगत् अथवा विशेषरूप से मानव प्राणी जिस वातावरण में एवं जिन भौतिक या प्राकृतिक पदार्थों के बीच रहता हुआ अपना जीवन चालू रखने में समर्थ होरहा है, पदार्थों की प्राकृतिक रचना का वह अन्तिम स्तर है। इन दोनों स्थितियों के अन्तराल में रचना के अनेक स्तर हैं। इसी बीच में आधुनिक रसा-यनशास्त्र-अभिमत 'एलीमैन्ट' का स्तर है। यह पद विभिन्न पदार्थ के एक विशिष्ट स्तर का बोधक है। ऐसा नहीं, कि यह किसी एक पदार्थ का नाम हो।

ऐलीमैन्ट की परिभाषा है—'जो वही वह है।' अर्थात् वह केवल एक पदार्थ है, उसमें अन्य किसीका मिश्रण नहीं। जैसे-सोना [सुवर्ण] अपने अन्तिम अणु-कण तक सोना ही सोना है, उसमें अन्य किसी तत्त्व [ऐलीमैन्ट] का संमिश्रण नहीं। परन्तु सोने के अन्तिम अणु-कण का जब विश्लेषण करदियाजाता है, तब वह सोना न रहकर अपने मूलतत्त्वों [प्रोटोन्, इलैक्ट्रान्, न्यूट्रान्] के रूप में बिखर जाता है। मूलतत्त्व एकदम छलांग लगाकर सोना नहीं बनजाते; इनको लम्बी यात्रा करनी पड़ती है, न मालूम, कितनी अज्ञात अनिर्दिश्यमान अवस्थाओं में होकर उन तत्त्वों को गुजरना होता है, तब कहीं एक निर्धारित स्तर की अवस्था आती है, मानव ने उस अवस्था में इसको पकड़ा। यह 'सोना' संसार के सन्मुख

है। विभिन्न अज्ञात अवस्थाओं की रचना प्रकृति [नेचर–Nature] की भट्टी में सदा चला करती है। इस भट्टी का नियन्त्रण व व्यवस्थापन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता रहता है। इस महान निर्माण की शाला [Laboratory] यह समस्त विश्व हमारे सामने है। उस अनन्त विश्व के अतिक्षुद्र भाग अपनी इस पृथिवी में समस्त एँलीमैन्ट को हम प्राप्त कररहे हैं।

आधुनिक विज्ञान के परीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट होगया है, कि पृथिवी, जल, तेज, वायु पदार्थों की रचना में किन तत्त्वों का कितना उपयोग होता है। पृथिवी के चारों ओर के वायु तथा जल-मण्डलों को साथ लेकर लगभग चौबीस मील[1] गहराई तक का पार्थिव चिप्पड़ मुख्यतः [९९ प्रतिशत] केवल बारह मूलतत्त्वों [Element] से बना है। उसका लगभग आधा भाग तो ऑक्सिजन ही है, और एक लगभग चौथाई सिलिकन है। शेष चौथाई भाग में अन्य दस मूलतत्त्व हैं। पृथिवी के एक परमाणु में संघटित बारह मूलतत्त्वों के नाम और इनके प्रतिशतांक परिमाण का विवरण इसप्रकार है—

नाम	प्रतिशतभाग	नाम	प्रतिशतभाग
ऑक्सिजन	४९.८५	पोटेशिअम्	२.३३
सिलिकन्	२९.०३	मैग्नेशिअम्	२.११
एल्युमीनिअम्	७.२८	हाइड्रोजन्	०.९७
लोहा	४.१२	टिटैनिअम्	०.४१
कैल्शिअम्	३.१८	क्लोरीन्	०.२०
सोडिअम्	२.३३	कॉर्बन्	०.१९
			९९.००
		शेष समस्त मूलतत्त्व	१.००
			१००.००

१— आजकल यद्यपि लगभग दस-बारह वर्ष से दूरी के नाप के लिये 'किलोमीटर' का प्रयोग जहां-तहां होने लगा है। यह वर्त्तमान प्रशासन के द्वारा चालू कियागया है। पर अभी इसका चलन बहुत कम है। पूर्वाभ्यास के अनुसार हमने यहां 'मील' का प्रयोग किया है। १ मील = १.६०९ किलोमीटर। अथवा १ मील = १६०९ मीटर। १ मीटर = १.०९४ गज। अथवा १ मीटर = ३९.३७ इञ्च। फलतः १ मील = १७६० गज = १६०९ मीटर।

यह विवरण पृथिवी के एक अणु की रचना का है। ऐसे अणुओं से मिलकर यह बाह्य पृथिवीमण्डल बना है, पृथिवी का यह सर्वातिशायी छोटा अणु [कण] होने से वैशेषिक में इसको 'परम+अणु=परमाणु' कहागया है। यदि इसका विभाजन अथवा विश्लेषण कर दिया जाय, तो यह पृथिवी-अणु नहीं रहेगा, अपने कारण-तत्त्वों के रूप में बिखर जायेगा। इसीलिये यह पृथिवी-परमाणु के रूप में 'अभेद्य' मानागया है। जबतक वह 'अभेद्य' है, तबतक ही वह 'पृथिवी-परमाणु' है। विश्लिष्ट होजाने पर पृथिवी-परमाणुता ही नहीं रहती।

इसीप्रकार जलीय, तैजस और वायवीय परमाणु की रचना के विषय की जानकारी को भी आधुनिक विज्ञान ने स्पष्ट किया है। जलीय परमाणु का संघटन निम्नलिखित एंलीमैन्ट से होता है—

नाम	घटक अंश
हाइड्रोजन	२ भाग
ऑक्सिजन	१ भाग

ईश्वरीय व्यवस्थाओं के अनुसार प्रकृति की स्वचालित भट्टी में प्राकृतिक तत्त्वों के विविध परिणाम हुआ करते हैं। अपने स्तर पर जल उन्हीं परिणामों में एक है। इसके घटक अंशों के विषय में विज्ञान द्वारा जानकारी प्राप्त होजाने पर भी सरल साधारण यान्त्रिक विधियों द्वारा यौगिक पदार्थ के घटक तत्त्वों को पृथक् नहीं कियाजासकता। साथ ही यह स्मरण रखना चाहिये, कि अनेक बार यौगिक के गुण उसके घटक तत्त्वों के गुण-धर्मों से भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ जल को ही लीजिये, यह जिन दो तत्त्वों [हाइड्रोजन+ऑक्सिजन] के योग से बना है, उसमें हाईड्रोजन ज्वलनशील है; आग्नेय-स्वभाव है, और दूसरा ऑक्सिजन जलने में सहायक होता है। परन्तु उनसे बना यौगिक जल अग्नि को बुझादेता है। इससे स्पष्ट होता है, किसी यौगिक का गुण-धर्म कभी अपने मूल-तत्त्व के गुणधर्म का विरोधी होता है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार तैजस परमाणु उस रचना-परम्परा में नहीं आता, जिसमें पृथिवी आदि के परमाणु की रचना का समावेश है। पृथिवी आदि की रचना रासायनिक संमिश्रण पर आधारित है, परन्तु वैशेषिक के अनुसार तैजस-तत्त्व में ताप, प्रकाश आदि का समावेश है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार ताप आदि की गणना भौतिकी के अन्तर्गत है। इसका विवेचन भौतिकी प्रसंग में आगे कियागया है।

पूर्वोक्त पार्थिव और जलीय परमाणुओं के समान वायवीय-परमाणु का संघटन आधुनिक विज्ञान के अनुसार दो रूपों में उपपादित कियागया है।

एक—वाल्यूम [Volume=आयतन] के आधार पर, दूसरा—वेट [Weight=भार] के आधार पर। इन दो स्थितियों में वायु के घटक तत्वों के प्रतिशतांश में एक दूसरी से थोड़ा अन्तर रहता है, जो इसप्रकार है।

नाम	वाल्यूम के अनुसार— प्रतिशत-भाग	वेट के अनुसार प्रतिशत-भाग
नाइट्रोजन	७८.१६	७५.५
ऑक्सिजन	२०.९०	२३.२
इनर्ट [अक्रिय] गैसेज़—	०.९४	१.३
	१००.००	१००.०

इनर्ट गैसेज़ [Inert Gases] में निम्नलिखित ऐलीमैन्ट तथा कतिपय यौगिकों की गणना कीजाती है— हीलियम् (२), निओन (१०), आर्गेन् (१८), क्रिप्टन् (३६), झैनन् (५४), रैडॉन् (८६)।

वायु के संघटन में जो यौगिक पायेजाते हैं, वे हैं—कॉर्बन डाइआक्साइड, जल, धूल, धुआं आदि। वायु की रचना[2] इन सब पदार्थों के परस्पर संघटन से होती है। वायु का यह विवरण धरातलीय वायु के विषय में समझना चाहिये।

वैशेषिक दृष्टि से अनुसार जल, धूल, धुआं एवं अन्य कॉर्बन डाइआक्साइड आदि यौगिक वायु के कारणभूत अंश [अवयव] नहीं हैं। ये पदार्थ वायु के साथ बाह्यरूप [अकारणीभूतरूप] में संयुक्तमात्र रहते हैं। जब तपती लू चलती है, तब वायु में आग्नेय अंश संयुक्त होजाते हैं, जल का पता नहीं लगता। पृथिवी के अनेक भागों पर, विशेषकर पर्वतीय भागों पर विशुद्ध वायु उपलब्ध होता है, जहां धूल तथा अन्य पदार्थों का संमिश्रण उसमें नहीं पायाजाता। इस आधार पर आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं का यह कहना, कि विभिन्न प्रदेशों में वायु विभिन्न प्रकार का पायाजाता है, और इस तरह कारणभेद से वायु अनेक प्रकार का है; चिन्तनीय है, वस्तुतः वायु अपने कारणीभूत अवयवों से बना सर्वत्र एक-समान पदार्थ है, प्रतीयमान उक्त भेद अन्य पदार्थों के बाह्य-संयोगमात्र के कारण है। वे बाह्य पदार्थ वायु के कारणीभूत अवयव नहीं हैं।

१—नाम के आगे कोष्ठक में दी गई संख्या सारिणी-क्रमांक है।

२—रचना का यह प्रकार N. GLINKA, General Chemistry पृष्ठ २८४-२९० के अनुसार प्रस्तुत कियागया है। यह ग्रन्थ सन् १९६० ईसवी में मास्को से प्रकाशित है।

ऐसा बाह्य संमिश्रण न केवल वायु में, प्रत्युत अन्य जल आदि पदार्थों में भी देखाजाता है, पर उतने से उसे जल आदि का कारण नहीं मानाजाता। जैसे विभिन्न प्रदेशों का वायु विभिन्न कहागया, ऐसे जल भी विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार का रहता है। गङ्गा नदी के जल से अन्य नदियों के जल नहीं मिलते। गङ्गाजल—विशेषकर पर्वतीय भाग में उपलब्ध—अतिस्वास्थ्यकर विशुद्ध पवित्र [अन्य पदार्थों से अमिश्रित] पायागया है; जबकि अन्य अनेक स्थानों के जल ऐसे नहीं होते। कहीं का जल भारी, खारी, बसीला, अपाचक आदि पायाजाता है; परन्तु उन संमिश्रणों को जल के घटक अंश नहीं मानाजाता। ऐसे ही धूल, जल आदि को वायु का घटक अंश नहीं मानाजाना चाहिये। पुष्प-वाटिका से बहता मन्द समीरण विविध गन्धयुक्त अनुभव होता है। पर वह अन्य द्रव्यों के संमिश्रण से है, जो द्रव्य वायु के कारणीभूत अंश नहीं।

अनेक ऐलीमैन्ट एक प्रकार से मट्टी के रूप[1] हैं, जो पृथिवी के विभिन्न प्रदेशों में पायेगये हैं। पृथिवी आदि तत्वों की रचना से पहले के रचना-स्तरों में इनका निर्माण होचुका होता है। रचना-क्रम के उस स्तर में पहुंचने तक अभी पृथिवी आदि का अस्तित्व भविष्यत् के गर्भ में अन्तर्हित रहता है। पृथिवी आदि के अणु जब रचना-क्रम के अनुसार अपने अस्तित्व में उभर आते हैं; वैशेषिक शास्त्र का विवेच्य क्षेत्र पदार्थ के इसी स्तर से प्रारम्भ होता है।

यद्यपि पृथिवी आदि के आद्य अणु अपने कारण से उत्पन्न होने के कारण अनित्य हैं; परन्तु कणाद ने इसको मूल मानकर आगे की रचना का विवरण प्रस्तुत किया है, इसलिये यहां पृथिवी आदि के अणु को नित्य मानना या कहना अनुपयुक्त नहीं है। यदि वह अणु को अनित्य कहता, तो उसे उसके मूल कारण का उपपादन करना आवश्यकरूप से अपेक्षित होजाता, और ऐसी दशा में वह अपने अभिवाञ्छित विवेच्य क्षेत्र से बाहर निकलजाता। वैशेषिक के विवेचन की यह ऐसी ही स्थिति है, जैसे आधुनिक रसायनशास्त्र द्वारा जगद्रचनाक्रम में स्वाभिवाञ्छित ऐलीमैन्ट-स्तर के पदार्थ का विवेचन है। प्रत्येक ऐलीमैन्ट अपने कारण-तत्त्वों से उत्पन्न व परिणत पदार्थ है; फिर भी रसायनशास्त्र उसे मूल तत्त्व मानकर उसके आगे के रचना-स्तरों का विवेचन प्रस्तुत करता है। उसे यह बताने या प्रतिपादन करने की आवश्यकता नहीं, कि वह किन अन्य मूल तत्त्वों से किसप्रकार उत्पन्न होता या परिणत हुआ करता है।

१—देखें—ऐलीमैन्ट-सारिणी संख्या ५७ से ७१ तक, तथा ९० से उपान्त्य संख्या तक।

पृथिवी आदि का अणु-परमाणु—साधारणतया यह कहाजाता है, कि जब पृथिवी आदि का अणु उत्पन्न हुआ मानागया, तो उसे परमाणु [परम-अणु] नहीं कहना चाहिये; क्योंकि परमाणु तो वह होगा, जो उसका भी कारण है। वस्तुतः 'अणु-महत्' आदि पदों का प्रयोग सापेक्ष होता है, कोई पदार्थ किसी की अपेक्षा अणु होने पर भी अन्य की अपेक्षा महत् कहाजासकता है; एवं अन्य किसी की अपेक्षा वही पदार्थ परम-अणु भी संभव है। जब तत्त्व रचनाक्रमानुसार परिणत होते-होते पृथिवी-रूप में सर्वप्रथम अभिव्यक्त होता है, पृथिवी के रूप में वह तत्त्व 'परम-अणु' है। पृथिवीरूप में उभरने वाला वह तत्त्व सबसे छोटा व सूक्ष्म रहता है। अब आगे जो भी पदार्थ पृथिवीरूप होगा, वह सब उससे बड़ा होगा; क्योंकि उसके परस्पर संयोजन से ही पृथिवी का स्थूल रूप अभिव्यक्ति में आयेगा। इसलिये पृथिवीरूप में उभरा आद्य-अणु 'परमाणु' माना जाये, तो यह दोषावह नहीं है।

परमाणु का उत्पाद—पृथिवी आदि का ऐसा परमाणु उत्पन्न होता है, इसका कथन व उपपादन सांख्य-योगशास्त्र में किया गया है। सांख्य में सर्ग-रचना को दो भागों में बांटा है, एक-अध्यात्म, दूसरा-अधिभूत। समस्त विश्व का मूल उपादान 'सत्त्व-रजस्-तमस्' रूप प्रकृति है। तात्पर्य है—मूलरूप में तीन प्रकार के अथवा तीन वर्गों में विभक्त तत्त्व हैं, जिनके प्रकार अथवा वर्ग का नाम—'सत्त्व-रजस्-तमस्' है। ये अनन्त हैं, एवं अतिसूक्ष्म कण अथवा शक्ति-तरंगों के रूप में कल्पना किये गये हैं। इन सबका सांघिक नाम 'प्रकृति' है। इस पद का धात्वर्थ है—प्रकृष्टरूप से अथवा पूर्णरूप से कृति-रचना का आधारभूत तत्त्व। समस्त विश्व का उपादान-तत्त्व; जिससे परिणत होकर यह विश्व प्रकाश में आता है। वेद ने इन मूलतत्त्वों को 'त्रिधातु' पद से बताया है। अन्य वैदिक तथा अवैदिक-बौद्ध आदि साहित्य में भी इस पद का प्रयोग मूल आधार-तत्त्व के अर्थ में हुआ है। वेद में विश्व के मूल उपादान तत्त्व के लिये अदिति, स्वधा, तमस्, वृक्ष आदि पदों का भी प्रयोग है, जिन्हें मूल उपादान तत्त्वों का सांघिक नाम समझना चाहिये।

इस अर्थ में 'त्रिधातु' पद बहुत स्पष्टार्थ है। इसमें दो पद हैं—'त्रि' और 'धातु'। दूसरा पद धारणार्थक है। 'धा' धातु से तुन् [उणा० १।३९] प्रत्यय होकर सिद्ध होता है; जिसका तात्पर्य है—धारण करने वाला, अर्थात् समस्त विश्व का आधारभूत—उपादानभूत तत्त्व। इसके साथ 'त्रि' पद का योग होने

पर अर्थ होजाताहै —तीन धातु, अर्थात् तीन प्रकार के अथवा तीन वर्गों में विभक्त आधारभूत तत्त्व। इस पद की स्पष्ट एवं यथार्थ व्याख्या कपिल ने सांख्यदर्शन में प्रस्तुत की है[1]। इन मूलतत्त्वों से जब जगद्रचना का प्रारम्भ होता है, उस समय रचना का स्तर सांख्य में 'अध्यात्म' बताया है। अध्यात्म-रचना के अनन्तर अधिभूत रचना का स्तर प्रारम्भ होता है।

अधिभूत रचना में 'तन्मात्र'—प्रस्तुत प्रसंग में सांख्यविषयक कुछ अधिक न कहकर केवल इतना कहना अपेक्षित है, कि 'अधिभूत' रचना का सर्वप्रथम तत्त्व वहां 'तन्मात्र' बताया है। यह अध्यात्म-रचना के 'भूतादि' नामक अहंकार-स्तर से परिणत होकर इस रूप में उभर आता है। कतिपय नियत मूलतत्त्व—सत्त्व, रजस्, तमस्—से अहंङ्कार की रचना होती है। उस रचना के तीन स्तर हैं—वैकृत, तैजस भूतादि[2]। वैकृत स्तर के अहङ्कार से अध्यात्म वर्ग की एकादश इन्द्रियों [दस बाह्य इन्द्रिय, एक आन्तर इन्द्रिय-मन] की रचना होती है। जिन मूलतत्त्वों से अहङ्कार परिणत होता है, उनमें कुछ न्यूनाधिक होकर उसका 'वैकृत' स्तर प्रकाश में आता है; जिसमें कार्यानुसार तत्त्वों के आपेक्षिक न्यूनाधिक्य से विभिन्न इन्द्रियों की रचना होजाती है।

जब उस अहङ्कार में अन्य कतिपय विशिष्ट, मूलतत्त्व संमिश्रित होते हैं, तब उसका 'भूतादि' नाम होता है। यह अहङ्कार के 'वैकृत' वर्ग से भिन्न वर्ग है। भारतीय दर्शनों में सर्गरचना के जिस स्तर को 'भूत' नाम दियागया है, उसका आरम्भ अहङ्कार की इस रचना के अनन्तर होता है। इसीकारण अहङ्कार के इस स्तरको उक्त नाम दियागया। जब 'भूतादि' अहङ्कार में अन्य अपेक्षित तत्त्वों का संमिश्रण होता है, तब 'तन्मात्र' नामक तत्त्वों का स्तर उभार में आता है। इसके अनन्तर 'भूत' नामक तत्त्वों की उत्पत्ति का क्रम है। 'तन्मात्र' स्तर के विभिन्न तत्त्वों से मिलकर सर्वप्रथम 'सूक्ष्मभूत' अपने अस्तित्व में आते हैं। इनके पांच वर्ग हैं, जो 'पञ्चभूत' नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हीं सूक्ष्मभूतों से स्थूलभूत प्रकाश में आते हैं। इनमें सूक्ष्मता और स्थूलता के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं रहता।

सर्गरचना के रूप में मूलतत्त्वों की यात्रा का यह 'सूक्ष्मभूत' स्तर वैशेषिक का 'परमाणु' है। अपने अव्यवहित पूर्व-स्थित जिन तत्त्वों से उभरकर यह इस

---

१. इस प्रसंग की अधिक जानकारी एवं विस्तृत विवेचन के लिये हमारी रचना 'सांख्यसिद्धान्त' द्रष्टव्य है।

२. सांख्यकारिका, २४, २५। सांख्यसूत्र, अ० २, सू० १६-१९, तथा अ० ३, सू० १॥

रूप में आया, उनका नाम 'सांख्य-योग शास्त्र' में 'तन्मात्र' अथवा 'अविशेष' है। विचारने पर स्पष्ट होता है, सर्गरचना के प्रक्रम में सांख्य-योगवर्णित 'तन्मात्र' का वही स्तर है, जो आधुनिक रसायनशास्त्र द्वारा वर्णित 'एलीमैन्ट' का है। रसायनशास्त्र में इसकी परिभाषा कीगई है—जो वही वह है, अर्थात् जो एकमात्र तत्त्व वही है, जिसमें समान स्तर के अन्य किसी तत्त्व का संमिश्रण नहीं है। जैसे—हाइड्रोजन अपने अन्तिम अणु तक हाइड्रोजन ही है, उसमें हीलिअम् आदि किसी अन्य एॅलीमैन्ट का कोई संमिश्रण नहीं है। इसीप्रकार प्रत्येक एॅलीमैन्ट 'वही वह है'।

ठीक यही स्वरूप सांख्यवर्णित 'तन्मात्र' का है। इस स्तर के तत्त्व को यह नाम उक्त आधार पर ही दियागया है। 'तन्मात्र' पद का ही यह अर्थ है—'जो वही वह है'। तदेव इति तन्मात्रम्'। अथवा 'तत्प्रमाणमस्य इति तन्मात्रम्'।[1] रचना में जिस वस्तु का जो एक अनोखा रूप उभर आता है, वह अपने रूप में एकमात्र वही है। आधुनिक रसायनशास्त्रवर्णित एॅलीमैन्ट तत्त्व सांख्य में 'तन्मात्र' पद द्वारा उपपादित हुआ है। योग में इसीको 'अविशेष' पद से कहा है[2]। अविशेष से विशेष-संज्ञक पदार्थ परिणत होता है[3]। वैकृत अहंकार [अस्मिता] का परिणाम बाह्य इन्द्रियां तथा आन्तर इन्द्रिय मन है, एवं तन्मात्र का परिणाम पृथिवी आदि पांच भूत। अस्मिता-अविशेष के स्तर की अपेक्षा रचनाक्रम में इन्द्रियों तथा मन का स्तर 'विशेष' संज्ञक है। ऐसे ही तन्मात्र-अविशेष की अपेक्षा पृथिवी आदि पांच भूत 'विशेष' स्तर के पदार्थ हैं। पञ्च-भूतों की यह अति सूक्ष्म अवस्था है। रचनाक्रम में प्राप्त पदार्थ की इसी स्थिति को वैशेषिक द्वारा पृथिवी आदि के 'परमाणु' रूप में वर्णन किया है।

---

१. द्रष्टव्य, पाणिनि—५।२।३७, ३८॥ इन सूत्रों पर व्याख्याग्रन्थ।

२. द्रष्टव्य—'विशेषाऽविशेषलिङ्गमात्राऽलिङ्गानि गुणपर्वाणि' पा० यो० सू० २।१९॥ तथा इस सूत्र का व्यासभाष्य—'तत्राकाशवाय्वग्न्युदकभूमयो भूतानि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणामविशेषाणां विशेषाः।···(एकादशेन्द्रियाणि)···एतानि अस्मितालक्षणस्याऽविशेषस्य विशेषाः।···षड् अविशेषाः—तद्यथा शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रञ्च···पञ्चाऽविशेषाः, षष्ठश्चाऽविशेषोऽस्मितामात्र इति।'
वैकृत-संज्ञक अस्मिता अविशेष के विशेष हैं—एकादश इन्द्रिय; तथा तन्मात्र-अविशेष के विशेष हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्चभूत।

३. 'अविशेषाद् विशेषारम्भः' सां० सू० ३।१॥

पदार्थ की इसी स्थिति को मूल मानकर आगे की रचना का विवरण प्रस्तुत करने के कारण इस शास्त्र का नाम 'वैशेषिकम्' है 'विशेषमधिकृत्य प्रवृत्तं-शास्त्रं वैशेषिकम्'।[1] वैशेषिक का मुख्य एवं मूलभूत प्रतिपाद्य विषय–पृथिवी आदि सूक्ष्मभूतों से स्थूलभूतों की उत्पत्ति आदि का प्रकार, उनके, गुण, कर्म तथा अन्य धर्मों का उपपादन, एवं इन्द्रियों के स्वरूप, कार्य तथा अन्य तत्संबन्धी अपेक्षित विवरणों का–प्रस्तुत करना है। पृथिवी आदि का परमाणु जब अपेक्षित तन्मात्रों से परिणत होकर अपने रूप में उभरता है, तब उसमें गन्ध, रस रूप, आदि विशेष धर्म अभिव्यक्त होजाते हैं, इसी कारण रचना के इस स्तर का नाम 'विशेष' है। पदार्थ का यह स्वरूप 'तन्मात्र' अवस्था में नहीं उभरता, इसीलिये वह 'अविशेष' कहाजाता है। उस अवस्था में 'तन्मात्र' के साथ 'गन्ध, रस, रूप' आदि पदों का [गन्धतन्मात्र, रसतन्मात्र इसप्रकार] प्रयोग–तन्मात्र से उत्पन्न होने वाले कार्य की स्थिति को लक्ष्यकर–शास्त्र में कियागया है। जिन तन्मात्र-तत्त्वों से गन्ध विशेषयुक्त पदार्थ परिणत होता है, वे तन्मात्र शास्त्र में 'गन्ध-तन्मात्र' कहे गये हैं। इसीप्रकार 'रसतन्मात्र' आदि समझने चाहियें।

यह प्रथम स्पष्ट करदिया है, कि पृथिवी आदि का परमाणु किन ऐलीमैन्ट के परस्पर संमिश्रण से बनता है। ऐलीमैन्ट नामक पदार्थ-स्तर के विषय में आधुनिक विज्ञान ने गम्भीर अनुसन्धान व पर्यवेक्षणों के फलस्वरूप जिन वास्तविकताओं तथा रचना-सम्बन्धी गहन सूक्ष्म विशेषताओं का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया है, उसके अनुरूप प्राचीन तत्त्वज्ञों द्वारा प्रस्तुत हुआ कोई विवरण आज उपलब्ध नहीं है; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, और ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं, कि उन मनीषियों ने सर्ग-रचनाक्रम की इन यथार्थताओं को समझा था। इसी कारण उससे जनित बोधित ये शास्त्र तत्त्व-विवेचन में सक्षम हैं।

उक्त पंक्तियों द्वारा स्पष्ट कियागया, तन्मात्र तत्त्व से पृथिवी आदि परमाणु उत्पन्न होता है। इसीलिये पृथिवी परमाणु आदि से तन्मात्र सूक्ष्म हैं। इस विषय को योगदर्शन के सूत्र [१।४५] की व्याख्या में व्यास ने स्पष्ट किया है। यह कार्य की अपेक्षा कारण की क्रमिक सूक्ष्मता 'प्रधान' पर्यन्त जाती है। प्रकृति की उस अतिसूक्ष्त अवस्था से पृथिवी आदि के परमाणु तक की रचना में उन तत्त्वों को इस लम्बी यात्रा के अनेक स्तरों में होकर गुजरना पड़ता है।

---

१. पाणिनि, ४।२।८७॥

तन्मात्र से परमाणु की उत्पत्ति का स्पष्ट निर्देश वाचस्पति मिश्र ने इसी प्रसंग में इसप्रकार किया है—

'पार्थिवस्य परमाणोर्गन्धतन्मात्रप्रधानेभ्यः पञ्चतन्मात्रेभ्य उत्पत्तिः। एवमाप्यस्य परमाणोर्गन्धतन्मात्रवर्जितेभ्यो रसतन्मात्रप्रधानेभ्यश्चतुर्भ्यः। एवं तैजसस्य परमाणोर्गन्धरसतन्मात्ररहितेभ्यो रूपतन्मात्रप्रधानेभ्यस्त्रिभ्यः। एवं वायवीयस्य परमाणोर्गन्धादितन्मात्रहीनाभ्यां स्पर्शशब्दतन्मात्राभ्याम्। एवं नाभसस्य शब्दतन्मात्रादेवैकस्मात्।'

[पा. यो. द. १।४४, सूत्र की तत्त्ववैशारदी],

वाचस्पति मिश्र की रचना तत्त्ववैशारदी के अतिरिक्त सांख्य के अन्य ग्रन्थों में भी पार्थिव आदि परमाणुओं के कृतक होने का उपपादन उपलब्ध होता है। सांख्यसप्तति [ईश्वरकृष्ण-कृत] की एक प्राचीन व्याख्या युक्तिदीपिका में इस विषय का विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है। यह सब प्रसंग १५वीं आर्या के व्याख्यान में कलकत्ता संस्करण के पृष्ठ ८३-८४ पर है। ग्रन्थकार ने यहां पार्थिव आदि परमाणुओं के कृतक होने में लगभग दस हेतु उपस्थित किये हैं; तथा स्पष्ट किया है, कि ये परमाणु जगत् के मूल उपादानकारण नहीं हैं। ये अन्य जिन उपादान, तत्त्वों से परिणत होकर इस अवस्था में अभिव्यक्त हुए हैं, उन्हीं तत्त्वों को जगत् का मूल उपादानकारण समझना चाहिये। ग्रन्थकार द्वारा इस विषय में प्रस्तुत हेतु कहां तक सद्धेतु कहे जासकते हैं, यह बात अलग है; पर पार्थिव आदि परमाणुओं की कृतकता के विषय में उसकी भावना स्पष्ट होजाती है।

भारतीय दर्शनशास्त्र में पृथिवी आदि परमाणु की उत्पत्ति को स्वीकार किये जाने पर भी परमाणु को वैशेषिक शास्त्र में नित्य तथा अभेद्य मानेजाने का कारण प्रथम स्पष्ट करदियागया है। नित्य इसलिये कहा, कि इसीको मूल मानकर आगे की रचना का विवरण देना वैशेषिक का लक्ष्य है। अभेद्य इसलिये है, कि 'पृथिवी-परमाणु' की स्थिति में रहते वहां कोई अन्तर आजाने की संभावना नहीं है। विश्लिष्ट होजाने पर वहां पृथिवीत्व ही न रहेगा, इसी कारण 'पृथिवी-परमाणु' रूप में वह अभेद्य कहागया है।

भौतिकी विज्ञान [Physics]

प्रसंग के प्रारम्भ में कहागया, आधुनिक विज्ञान साधारणरूप से दो भागों में विभक्त है। एक-रसायन, दूसरा-भौतिकी। रसायनविषयक अपेक्षित

अंश का निर्देश संक्षेप से गत पंक्तियों में कियागया। उसी सन्दर्भ में वैशेषिक-प्रतिपाद्य पृथिवी, जल और वायु की रचना-पद्धति का उल्लेख कियागया। वहां तेजस् द्रव्य का वर्णन नहीं हुआ। कारण यह है, कि वैशेषिक प्रतिपाद्य तेजस् पदार्थ अथवा द्रव्य आधुनिक विज्ञान की भौतिकी के साथ थोड़ा मेल खाता है, रसायन के साथ नहीं।

जैसा प्रथम कहा गया, आधुनिक भौतिकी विज्ञान में केवल ऐनर्जी [ENERGY—ऊर्जा] का विवरण प्रस्तुत कियाजाता है। ऊर्जा पांच वर्गों में विभाजित है—ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत, चुम्बकत्व। प्रसंग के प्रारम्भ में इनका उल्लेख करदियागया है। यहां देखना है, कि वैशेषिक शास्त्र की दृष्टि से इनका स्थान कहां है।

ऊर्जा-तत्त्व गुण हैं—विचारने पर स्पष्ट होता है, भौतिकी के इन ऊर्जा-तत्त्वों का समावेश वैशेषिक दृष्टि से प्रायः गुणों में है, 'गुण' नामक पदार्थ सदा द्रव्य पदार्थ में आश्रित रहता है। प्रसंग के प्रारम्भ में यह निर्देश कियागया है, कि ऊर्जा अन्य पदार्थ में आश्रित रहकर ही अभिव्यक्त होपाती है। यह स्थिति दोनों जगह एक समान विचार को प्रकट करती है।

ताप—सबसे पहले 'ताप' [HEAT-हीट—ऊष्मा] को लीजिये, वैशेषिक द्वारा यह 'उष्णस्पर्श' के रूप में विवेचित हुआ है। यह स्पर्श गुण है, और तेजस् पदार्थ अथवा द्रव्य में आश्रित रहता है। तात्पर्य हुआ, यह तेजस् द्रव्य का गुण है। ऊष्मा का उत्पादन क्रिया [कर्म—संघर्षण] से होता है। जब कोई द्रव्य परस्पर संघट्टन करते हुए क्रियाशील रहते हैं, तब उनमें अन्तर्हित तैजस अणु अभिव्यक्त होजाते हैं, उनमें समवेत ऊष्मा [ताप-उष्णस्पर्श] गुण उभर आता है। इसकी तीव्रता-मन्दता क्रिया की तीव्रता मन्दता पर निर्भर रहती है। आधुनिक विज्ञान के आविष्कर्त्ता व प्रतिष्ठाताओं ने इस दिशा में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किये हैं, वे सब ताप की विभिन्न शाखाओं के विवरण में फैले हैं। मूलभूत तथ्य केवल इतना है, कि ताप और प्रकाश तैजस गुण हैं, अनन्त विश्व के अतिलघु भाग हमारे सौरमण्डल में इनका अटूट भण्डार एवं अजस्र स्रोत केवल सूर्य है। भूमण्डल पर ताप व प्रकाश के जितने साधन—कोयला, तेल पैट्रोल आदि-उपलब्ध हैं, वे सब चिर-संचित सौर आतप का प्रतिनिधित्व करते हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य की रचना में हाईड्रोजन और हीलिअम् ऐलीमैन्ट का अधिक भाग है, जिनमें पहला अतिमात्र ज्वलनशील तथा दूसरा इसमें अतिसहयोगी है। वहां की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ताप व प्रकाश अभिव्यक्त होते रहते हैं। उससे अपेक्षित कार्य संपन्न होते हैं।

प्रकाश : वैशेषिक में प्रकाश [LIGHT-लाइट] को 'भास्वर-शुक्लरूप' से व्याख्यात कियागया है। यह विशिष्ट रूप केवल तेजस् द्रव्य में आश्रित रहता है। द्रव्य और गुण की परिभाषा के रूप में वस्तुतत्त्व का विवेचन प्रस्तुत करना वैशेषिक की अपनी एक असाधारण पद्धति है, यदि मोटेरूप में यह कहाजाये, कि रसायनशास्त्र के ऐलीमैन्ट वैशेषिक के द्रव्य-जातीय; तथा भौतिकीशास्त्र के ताप, प्रकाश आदि पदार्थ वैशेषिक के गुण-जातीय हैं, तो इसमें कुछ अधिक असामञ्जस्य न होगा। यद्यपि चिन्तन के अन्तिम स्तरों में जाकर शक्ति और शक्तिमान् एवं गुण और गुणी में कोई अन्तर नहीं रहजाता; परन्तु चिन्तन की प्रारम्भिक दशाओं में उनका भेदमूलक विवरण अथवा व्यवहार विशेष आपत्ति-जनक न समझाजाना चाहिये, क्योंकि इसके बिना चिन्तन की गाड़ी चलती नहीं। वैशेषिकशास्त्र का तत्त्व-विवेचन इस अवसर को अपने अन्दर समेटे हुए है।

ध्वनि—भौतिकी में इसके लिये 'साऊण्ड' [Sound] पद का प्रयोग किया जाता है। व्यक्त-अव्यक्त एवं प्राणी अथवा अप्राणी द्वारा जनित प्रत्येक प्रकार की ध्वनि [शब्द, आवाज़] का इसमें समावेश है। वैशेषिक के अनुसार यह गुण हैं, यह 'शब्द' पद से व्यवहृत है। इसका आश्रय द्रव्य आकाश मानागया है। आधुनिक विज्ञान ने इस तत्त्व को 'ईथर' नाम दिया है। सुनागया है, अब प्रायः वैज्ञानिक इस तत्त्व को उपेक्षित समझने लगे हैं। उनकी मान्यता है—वायु के होने पर ही शब्द उत्पन्न होता प्रतीत होता है, अतः वह उसीका गुण माना जाना चाहिये। वस्तुतः यह भी कथन आंशिक है। जहां वायु नहीं है जल आदि के अन्दर; वहां भी ध्वनि होती और सुनी जाती है। परीक्षणों से यह जानागया है, कि जल-वायु आदि ध्वनि को वहन करने के माध्यम हैं। बादल में बिजली की चमक [प्रकाश] और गरज [ध्वनि] एकसाथ होते हैं; पर चमक तत्काल दिखाई देजाती है, और गरज उसके कुछ क्षण अनन्तर सुनाई देती है, यहां ध्वनि का वाहक-माध्यम वायुमण्डल है।

सामने खुले मैदान में लगभग फर्लांग की दूरी पर धोबी कपड़े धो रहा है, या बढ़ई कुल्हाड़े से लकड़ी काट रहा है; वहां धोबी जब एक बार कपड़े को पटड़े पर पटक कर दुबारा पटकने के लिये ऊपर उठा लेता है, अथवा बढ़ई एक बार कुल्हाड़े की चोट लकड़ी पर देकर दुबारा चोट देने के लिये कुल्हाड़े को ऊपर

---

१. छात्रावस्था में एकबार कुछ साथी छात्रों ने मिलकर जल में ध्वनि करने और सुनने का परीक्षण किया। यह परीक्षण गंगनहर में कनखल के पुल और ज्वालापुर के रेलवेपुल के मध्य कियागया। दूरी एक मील के लग-

उठाकर तान लेता है, तब कहीं कपड़े की पहली पटक और कुल्हाड़े की चोट की ध्वनि दूर सामने खड़े व्यक्ति को सुनाई देती है। परन्तु इससे भी अधिक दूरी होने पर पानी में ध्वनि तत्काल सुनाई देती है[1]। इससे ज्ञात होता है, वायुमंडल की अपेक्षा जल-मण्डल ध्वनि का तीव्र-वाहक है। विद्युत उससे भी अधिक तीव्र-वाहक है।

आकाश सर्वत्र व्यापक तत्त्व है। 'ईथर' को आधुनिक विज्ञान में ऐसा ही माना जाता है। इस तत्त्व की मान्यता के लिये वैज्ञानिकों की ओर से उपेक्षा के कारणों के विषय में कुछ कहा नहीं जासकता। संभव है, रसायनशास्त्र की सीमा में इसका समावेश न होसकना उपेक्षा का कारण रहा हो। किसी भी वस्तु तत्त्व की मान्यता के लिये ऐसा होना आवश्यक है। यह एक ध्यान देने की बात है, वस्तुतत्त्व के कार्यरूप स्थूल स्तर की ओर से मूल की दिशा में विवेचन करने के लिये भारतीय दर्शन [वैशेषिक, बौद्ध आदि] में चार विधाओं को माना है—पृथिवी, जल, तेज, वायु। ये और इनके विकार वस्तुरूप हैं, इन्हें देखा व अनुभव कियाजासकता है, ये जगह को घेरते हैं। जबकि आधुनिक भौतिकी विज्ञान के किसी पदार्थ में यह सब नहीं होता। आकाश में भी यह सब नहीं है। पर भौतिकी में भी आकाश की गणना नहीं है। भारतीय दर्शन ध्वनि के आश्रयरूप में आकाश को स्वीकार करता है। यदि आधुनिक विज्ञान के अनुसार ऊर्जा (प्रकृत में ध्वनि) का निराश्रित रहना संभव नहीं, तो उसका कोई आश्रय मानना आवश्यक होगा। आधुनिक विज्ञान इसका क्या समाधान करता है, कह नहीं सकता। यह

भग थी। दो घड़ियों का समय ठीक मिलाकर दो साथियों को दे दी गईं। वे निर्धारित समय के अनुसार एक कनखल के पुल के समीप और दूसरा रेलवे पुल के पास पानी के किनारे खड़े होगये। दूसरे दो साथियों में से एक ने ठीक निर्दिष्ट समय के साथ कनखल के पुल की ओर से पानी के अन्दर दो पत्थरों को आपस में धीरे-धीरे टकराया। ठीक उसी समय दूसरी ओर रेलवे पुल के पास अन्य साथी ने पानी में गोता लगाकर पत्थरों की उन चोटों को गिना। उसके ठीक पांच मिनट बाद रेलवे पुल की ओर के साथी ने पत्थरों को पानी के अन्दर बजाया, और कनखल के पुल की ओर के साथी ने गोता लगाकर उन ध्वनियों को सुना। दोनों ओर गिनती ठीक रही, तथा पत्थरों द्वारा ध्वनि करने और उसके सुनने में समय का कोई अन्तर ज्ञात नहीं हुआ। ध्वनि का होना और सुनना एक साथ प्रतीत हुए। इसमें जल की गति का कोई प्रभाव नहीं रहता, जलमण्डल परिपूर्ण एवं निर्बाध होना चाहिये। परीक्षण का यह फल सामने आया।

निश्चित है, कोई एकदेशी वस्तुतत्त्व ध्वनि का आश्रय संभव नहीं। आकाशन सही, पर आकाशाश्रित ध्वनि को आधुनिक विज्ञान भौतिकी में समाविष्ट करता है।

ध्वनि एक उर्जा (Energy-ऐनर्जी) है। आधुनिक विज्ञान की ऐसी मान्यता है, कि एक ऊर्जा दूसरी ऊर्जा के रूप में परिवर्त्तित होजाती है। यह स्थिति किन्हीं विशेष निमित्तों के उपस्थित होने पर होती है। रेडियो द्वारा ध्वनि का प्रसारण किया जाता है। यहां ध्वनि विद्युत्तरंगों में परिवर्तित होजाती है। और श्रुतियन्त्र में पहुंचकर वह पुनः ध्वनिरूपमें परिवर्त्तित होजाती है। वस्तुतः यहां भी विद्युत् द्वारा ध्वनि के वहन को वर्णन करने की यह एक वैज्ञानिक रीति-मात्र है। अथवा ध्वनि के तरंगित होने का माध्यम है।

प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार उच्चारण और श्रवण के जो साधन सामान्यतः प्राणी को उपलब्ध हैं, सांसारिक व्यवहार को सन्तुलित रखने में उनका महत्वपूर्ण योग है। यदि सामान्यतः ध्वनि का विद्युत् के साथ संपर्क हो-जाया करता, तो संसार में कोई बात गुप्त नहीं रक्खी जासकती थी; ऐसा होने से मानव समाज परस्पर संघर्ष में फंसकर उच्छिन्न होजाता। मानव ने उस शक्ति का उद्भावन कर उपयोग किया है, वह अत्यन्त सीमित है। फिर भी राष्ट्रों के गुप्त समाचारों की चोरी आदि कर एवं अन्य अनेक प्रकार से ये उद्-भावित साधन महान संघर्ष के कारण बनजाते हैं। यद्यपि इनका रचनात्मक उपयोग मानव समाज की विविध सुविधाओं के लिये अत्यन्त अनुकूल है। फलतः ध्वनि एक गुण है, और वह एक आकाश नामक द्रव्य के आश्रित रहता है, वैशेषिक का यह दृष्टिकोण उपेक्ष्य एवं परिहार्य नहीं है।

विद्युत्—ऊर्जा की गणना में अन्यतम एक विद्युत् (Electricity) है। वैशेषिक दृष्टि से यह तैजस तत्त्व है। विद्युत के रूप में इस तैजस तत्त्व की जानकारी का इतिहास बहुत पुराना है। वर्त्तमान काल में इसकी जानकारी और उपयोग के रूप में जो विस्तार है, उसका प्रारम्भ अब से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुआ। सोलहवीं शताब्दी में बिलियम गिलबर्ट (१५४०-१६०३ ई०) ने आकर्षण शक्ति के रूप में इसका अध्ययन प्रारम्भ किया, और उसीने इसको 'इलैक्ट्रिक' नाम दिया। 'इलेक्ट्रिसिटी' शब्द का प्रयोग इसके लिये सर्वप्रथम सन् १६५० ई० में वाल्टर शार्लटन (Walter CHarlton) ने किया। इसी समय राबर्ट बॉयल (१६२७-१६९१ ई०) ने पता लगाया, कि विद्युन्मय वस्तुएं हल्की वस्तुओं को शून्य में भी आकर्षित करती हैं। शून्य का तात्पर्य है, जहां बाह्य वायु का अस्तित्व नहीं है; अर्थात् विद्युत के प्रभाव के लिये वायु का माध्यम होना आवश्यक नहीं है। इसप्रकार लगभग इन चार शताब्दियों में निरन्तर

कियेगये चिन्तन एवं श्रम का सुपरिणाम वर्त्तमान विद्युत् शक्ति के रूप में सर्व-विदित है।

भारतीय दर्शन में कोई ऐसे स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं, जिनसे यह ज्ञात होसके, कि वर्त्तमान काल के समान प्राचीन काल में विद्युत् का ऐसा प्रयोग होता रहा हो। दर्शन की अपेक्षा अन्य भारतीय प्राचीन साहित्य में इस विषय के कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं, जिससे विद्युत् के व्यावहारिक प्रयोग तथा उसकी तात्कालिक सूक्ष्म जानकारी का आभास होता है। ऐसे प्रसंगों में जल, तेजस्, वायु को देवता-रूप मानकर उल्लेख हुआ है, जो इनके दिव्यशक्तिरूप को अभिव्यक्त करता है। ये दिव्य शक्तियां वहां राष्ट्र के सेवक के रूप में निर्दिष्ट कीगई हैं; जिससे इनके जनहित में प्रयोग किये जाने का पता लगता है।[1]

संस्कृत साहित्य अथवा शब्दकोष की एक विशेष बात है, कि किसी एक अर्थ के वाचक रूप में अनेक पदों का प्रयोग होता है। वस्तुस्थिति में प्रत्येक पद उस वस्तु की किसी ऐसी विशेषता को अभिव्यक्त करता है, जो अन्य पद द्वारा नहीं होती। इसप्रकार पर्यायवाची होते हुए भी वे पद उस अर्थ की किन्हीं विशेषताओं के इतिवृत्त को अपने अन्दर समेटे रहते हैं। संस्कृत में विद्युत् के लिये भी अनेक पदों का प्रयोग होता है। उनमें विद्युत्-विषयक तात्कालिक जानकारी का बहुत-सा इतिहास छिपा है। उसके उद्घाटन का न यह अवसर है, और न वह अपेक्षित है। यहां केवल उस तत्त्व के स्वरूप एवं उसकी रचना व मूल उपादान आदि के विषय में यथामति प्रकाश डालना प्रसंगानुकूल है। दर्शन के क्षेत्र में इतना ही आता है। प्रयोग का क्षेत्र दूसरा है।

भारत का सर्वप्राचीन साहित्य वेद है। वहां आधिभौतिक दृष्टि से इन्द्र अश्विनी देवों का विद्युत रूप में वर्णन है। अश्विनी का विवरण बड़ा चमत्कार-पूर्ण है। यह दो का ऐसा जोड़ा है, जिनमें से कोई भी एक दूसरे को छोड़कर नहीं रहसकता। फिर 'अश्विनी' नाम इनकी अति तीव्र गतिशीलता को अभिव्यक्त करता है। इस मिथुनीभूत कलेवर की दो दिव्य शक्ति वही हैं, जिनको आधुनिक विज्ञान में पाजिटिव पॉवर तथा नैगेटिव पॉवर कहाजाता है। ये अनिवार्यरूप से मिथुनीभूत रहकर ही कार्यक्षमता की अवस्था को प्राप्त करती हैं। विद्युत् के कार्यक्षम कलेवर की रचना का रूप वेद के 'अश्विनी' पद में अन्तर्हित है।

ज्वलनशीलता [ताप] और प्रकाशरूपता विशेषताओं के आधार पर विद्युत् को वैशेषिक में तैजस द्रव्यस्वरूप मानागया है। गत पंक्तियों में यह निर्देश किया,

---

१. द्रष्टव्य—वाल्मीकि रामायण, लंकापुरी-वर्णन।

कि ताप और प्रकाश वैशेषिक दृष्टि से पदार्थ के गुण-वर्ग में आते हैं। ये गुण जहां समवेत हैं, वह तेजस् द्रव्य होता है, विद्युत् ऐसा ही है।

चुम्बकत्व—यह पद किसी वस्तु विशेष में 'आकर्षण' के शक्ति-सद्भाव को अभिव्यक्त करता है। एक पदार्थ दूसरे का आकर्षण करता है। जो आकर्षक है, उस में आकर्षण करने की शक्ति है। जो आकृष्ट होता है, अथवा आकृष्यमाण है, उसमें आकर्षण हो रहा है। 'आकर्षण' एक क्रिया है, यह उस पदार्थ का धर्म है, जो आकृष्ट किया जारहा है, आकर्षण करने की शक्ति दूसरे पदार्थ में है, जिसे चुम्बक या मैग्नेट कहाजायेगा। उसमें निहित आकर्षण शक्ति चुम्बकत्व है। नैसर्गिकरूप से बना चुम्बक नाम का पदार्थ पायाजाता है। संस्कृत में उसका नाम 'अयस्कान्त' है। नैसर्गिक अयस्कान्त बहुत कम उपलब्ध होता है। वैज्ञानिक पद्धति से लौहसम धातु में विद्युत् को संक्रान्त करदियाजाता है। उससे वही कार्य संपन्न कियाजासकता है, जो नैसर्गिक चुम्बक से होता है। इससे परिणाम निकलता है, चुम्बक में आकर्षणशक्ति विद्युत का रूप है। उसके योग से लौहधातु शक्ति-संपन्न होजाता है। शक्तिशाली पदार्थ शक्तिहीन को अपनी ओर आकृष्ट कर ले, यह स्वाभाविक है।

किसी [नैसर्गिक या नैमित्तिक] चुम्बकखण्ड में आकर्षण की एक सीमित शक्ति रहती है। यदि आकृष्यमाण अचुम्बक वस्तु अन्य निमित्तों के कारण उससे [चुम्बक से] अधिक शक्तिशाली है; तो वह चुम्बक सन्मुख स्थित उस अचुम्बक वस्तु को आकृष्ट नहीं कर सकेगा। इससे यह परिणाम सामने आता है, कि शक्तिशाली चुम्बक पदार्थ अपनी अपेक्षा शक्तिहीन अचुम्बक पदार्थ को आकृष्ट करता है। आकर्षक चुम्बक पदार्थ में 'आकर्षण-शक्ति' नाम से जो तत्त्व है, वह विद्युत् रूप है, यह स्पष्ट होता है। कहाजाचुका है, वैशेषिक दृष्टि से वह 'तेजस्' पदार्थ के अन्तर्गत आता है। यह आवश्यक नहीं, कि प्रत्येक चुम्बक किसी भी अचुम्बक पदार्थ को आकृष्ट करसके। यह पदार्थ-धर्म की किसी विशेषता पर निर्भर रहता है।

ऊर्जा के अन्य भेद

पांच विधा जो ऊर्जा की गत पंक्तियों द्वारा निर्दिष्ट कीगई हैं, उनके अतिरिक्त ऊर्जा के अन्य प्रकार भी वैज्ञानिकों ने अनुभव किये हैं। उनका कहना है, विविध प्रकार के पिण्डों से संबद्ध ऊर्जा को यन्त्रों की सहायता से कार्यरूप में परिणत होते स्पष्टतः देखा जासकता है। इसी आधार पर इसका नाम 'यान्त्रिक ऊर्जा' कहाजाता है। यान्त्रिक ऊर्जा के दो भेद हैं, एक—स्थितिज ऊर्जा; दूसरी—

गतिज ऊर्जा। इनका संक्षिप्त विवरण इसप्रकार है—

स्थितिज ऊर्जा – किसी भी पिण्ड में स्थित [समवेत] नैसर्गिक शक्ति का नाम 'स्थितिज ऊर्जा' है। यह शक्ति पृथिवी के आकर्षण की प्रतियोगिता में अभिव्यक्त होती है। यदि एक किलोग्राम भार के पिण्ड को एक मीटर ऊपर उठाकर पट्ट पर रखदियाजाय, तो जो शक्ति पृथिवी के आकर्षण के विरुद्ध उसके उठाने में व्यय हुई है, उतनी शक्ति उस पिण्ड में संक्रान्त होकर उस पिण्ड की उतनी कार्यक्षमता को बढ़ा देती है। उस पट्ट से गिरने पर वह पिण्ड उतनी ही शक्ति से पैर को कुचलता है; अथवा जहां गिरे, उस स्थान को विकृत करता है। यह ऊर्जा पृथिवी तथा पिण्ड की आपेक्षिक स्थिति के कारण होती है। इसीलिये इसको 'स्थितिज ऊर्जा' कहते हैं।

जब कभी भी पिण्डों के किसी समुदाय की पारस्परिक दूरी–अथवा एक ही पिण्ड के विभिन्न भागों–की स्वाभाविक स्थिति में अन्तर उत्पन्न होता है, तो स्थितिज ऊर्जा में भी अन्तर आजाता है। कमानी को दबाने से अथवा धनुषको झुकाने से उनमें स्थितिज ऊर्जा आजाती है। इसीप्रकार नदियों में बांध-बांधकर पानी को अधिक ऊंचाई पर इकट्ठा कियाजाता है। इस पानी में स्थितिज ऊर्जा आजाती है। उसीके अनुसार इनकी कार्यक्षमता बढ़जाती है। वृक्षकी टहनी को कुछ नीचे झुकालें, या एक ओर मोड़ लें; उसमें स्थितिज ऊर्जा आजाती है। छोड़ देने पर ऊर्जा के अनुसार कुछ क्षण कम्पन देकर अपनी जगह पुनः स्थिर हो जाती है।

गतिज ऊर्जा—ऊर्जा एक शक्ति या बल है। यह संवेग से अभिव्यक्त होती है। संवेग-मन्द या तीव्र-जितनी क्षमता से परिवर्त्तित होता है, उसी दर से ऊर्जा की कार्यक्षमता रहती है,। यह ऊर्जा उस पिण्ड में उसकी गति के कारण होती है, इसीलिये यह 'गतिज ऊर्जा' कहलाती है। जब हम धनुष को झुकाकर तीर छोड़ते हैं, तो धनुष की स्थितिज ऊर्जा तीर की गतिज ऊर्जा में परिवर्त्तित हो-जाती है।

स्थितिज ऊर्जा एवं गतिज ऊर्जा के पारस्परिक परिवर्तन का सबसे उपयुक्त उदाहरण सरल लोलक है, एक पतले दृढ़ धागे में लटका लट्टू। जब हम लोलक के गोलक [लट्टू] को एक ओर खींचते हैं, तो गोलक अपनी साधारण स्थिति से थोड़ा ऊंचा उठ जाता है, और इसमें स्थितिज ऊर्जा अभिव्यक्त होजाती है। अभिव्यक्ति का कारण है, उसे व्यक्ति द्वारा एक ओर खींचाजाना। जब हम गोलक को छोड़ते हैं, तो गोलक इधर-उधर झूलने लगता है। पहले इसकी स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्त्तित होजाती है। जब गोलक लटकने की

साधारण स्थिति में आता है, तो इसमें केवल गतिज ऊर्जा रहती है। सवेग के कारण गोलक दूसरी ओर चलाजाता है, और गतिज ऊर्जा पुनः स्थितिज ऊर्जा में परिवर्त्तित होजाती है। साधारणतया वायु के घर्षण के विरुद्ध कार्य करने से गोलक की ऊर्जा कम होती जाती है, और इसकी गति कुछ देर में बन्द होजाती है, यदि घर्षण का प्रतिरोधिक बल न हो, तो गोलक अनन्त काल तक चलता रहसकता है।[1]

वैशेषिक का दृष्टिकोण—यान्त्रिक ऊर्जा के विषय में वैशेषिक का दृष्टिकोण क्या है? विचारणीय है। प्रस्तुत ऊर्जा के विवरण को गम्भीरतापूर्वक समझने पर स्पष्ट होता है, वैशेषिक ने पदार्थ की इस स्थिति को 'संस्कार' नामक गुण के द्वारा विवृत किया है। संस्कार के तीन भेद वैशेषिक में स्पष्ट किये हैं—भावना, स्थिति-स्थापक, वेग। भावना को छोड़िये, क्योंकि यह आत्मनिष्ठ संस्कार है, यह आधुनिक विज्ञान के चिन्तन-क्षेत्र से बाहर है। आधुनिक विज्ञान पूर्णरूप से केवल जड़-तत्त्व विषयक चिन्तन तक सीमित है। शेष दो संस्कार जड़-तत्त्व-समवेत रहते हैं। गत पंक्तियों में वर्णित यान्त्रिक ऊर्जा के दोनों भेद इन दोनों संस्कारों के स्वरूप में अन्तर्हित हैं। स्थितिज-ऊर्जा को स्थितिस्थापक संस्कार अभिव्यक्त करता है, तथा गतिज-ऊर्जा को वेग नामक संस्कार। इन दोनों ऊर्जाओं के स्वरूप एवं परिवर्त्तन क्रम को समझाने के लिये जो ऊपर गोलक का उदाहरण दियागया है; उससे ठीक मिलता-जुलता उदाहरण वृक्ष की टहनी को झुकाने का है, जिसका उल्लेख 'स्थितिज ऊर्जा' के प्रसंग में प्रथम हुआ है। ये दोनों उदाहरण पदार्थविषयक समान स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं। जड़-तत्त्वनिष्ठ विशिष्ट शक्ति प्रस्तुत ऊर्जा का अभिव्यञ्जन वैशेषिक शास्त्र में टहनी झुकाने के उक्त उदाहरण द्वारा अनेकत्र कियागया है।

आधुनिक विज्ञान में इसको 'यान्त्रिक ऊर्जा' नाम देने का संभवतः यही कारण मालूम देता है, कि इसे अपनी कार्यक्षमता की अभिव्यक्ति के लिये बाह्य साधन का सहयोग अपेक्षित होता है। इस युग का बाह्य साधन यन्त्र है। यह युग ही यन्त्र का है। समझना चाहिये, बाह्य साधन को 'यन्त्र' पद से अभिव्यक्त किया गया है।

प्रस्तुत ऊर्जा को आधुनिक विज्ञान में निम्नलिखित रूप में व्यवहृत किया जाता है।

१—यान्त्रिक ऊर्जा का विवरण 'नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी' द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी विश्वकोष' के 'ऊर्जा' प्रसंग के आधार पर दियागया है।

यान्त्रिक ऊर्जा=Mechanical Energy. **मिकैनिकल ऐनर्जी,**

स्थितिज ऊर्जा=Potential Energy. **पोटेन्शल ऐनर्जी,**

गतिज ऊर्जा=Kinetic Energy. **काइनेटिक ऐनर्जी,**

ऊर्जा और वैशेषिक—आधुनिक विज्ञान के भौतिकी विभाग में ऊर्जा [Energy ऐनेर्जी] नाम से जिन पदार्थों का विवेचन हुआ है उनका वैशेषिक-दृष्टिकोणसे गत पंक्तियों में अतिसंक्षेप से दिग्दर्शनमात्र कराने का प्रयास किया है। इसके परिणामस्वरूप भौतिकी के प्रायः समस्त पदार्थ वैशेषिक की गुण-परिभाषा के अन्तर्गत आजाते हैं। केवल 'विद्युत्' नामक ऊर्जा ऐसा पदार्थ है, जो शक्तिरूप से तैजस द्रव्य की कोटि में आता है। वह प्रकाश [भास्वर शुक्ल रूप] और ताप [उष्ण स्पर्श] दोनों को अपने में समाये रहता है। गुणरूप ये दोनों पदार्थ जहां भी उपलब्ध होते हैं, वैशेषिक की दृष्टि से वह तैजस द्रव्य है।

ऊर्जा के उपादान—ऊर्जा पदार्थ के विषय में यह ज्ञातव्य है, कि इसके उपादान तत्त्व क्या हैं? यह अपने अभिव्यक्त-रूप में किस मूल स्थान से उभरकर इस अवस्था में आता है। आधुनिक विज्ञान में इसकी अविनाशिता का उल्लेख हुआ है। वहां इसका तात्पर्य यही है, कि ऊर्जा का विनाश नहीं होता; वह रूपान्तरों में परिवर्त्तित होजाता है। भारतीय दर्शन में चिन्तन के अन्तिम स्तरों पर जाकर इस सिद्धान्त को मान्यता दीगई है, कि सर्वात्मना विनाश किसी पदार्थ का नहीं होता। मूलभूत तत्त्व सर्वदा विद्यमान रहता है, परिणामस्वरूप उसकी अवस्था बदलती रहती है। वह एक स्थिति से दूसरी में परिवर्त्तित होजाता है, पर सर्वथा नष्ट कभी नहीं होता। जो मूलतः नहीं है, उसका कभी भाव नहीं, जो है, उसका सर्वथा कभी नाश नहीं।[1] ऐसी दशा में स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है, कि ऊर्जा' जब है, तो उसके मूल उपादान तत्त्व अवश्य होने चाहियें, यदि उसके अन्य कोई मूल उपादान तत्त्व नहीं हैं, तो उसे स्वयं मूलतत्त्व-रूप मानाजाना चाहिये। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से ऐसी मान्यता कहां तक तथ्य है, कह नहीं सकता।

आधुनिक विज्ञान के कतिपय विद्वानों से इस विषय में चर्चा का प्रसंग आया है; पर उससे किसी निश्चय पर नहीं पहुंचाजासका। भौतिकी में विश्व के

---

१. द्रष्टव्य गीता, २।१६। सांख्यसूत्र, १।७६॥१।८६॥तथा ५।५२॥प्रथम अध्याय की सूत्रसंख्या इस संस्थान से प्रकाशित सांख्यदर्शन के अनुसार है। इसमें ३५ जोड़कर किसी भी अन्य संस्करण में देखा जा सकता है।

मूल उपादान-तत्त्व—प्रोटोन्, इलैक्टॉन्, न्यूट्रान् माने जाते है। क्या ऊर्जा का अभिव्यञ्जन इन्हीं मूलतत्त्वों से होता है? यदि होता है, तो जैसे हाइड्रोजन ऐलीमैंट से लगाकर नोबैलिअम् आदि तक प्रत्येक ऐलीमैंट की रचना में विज्ञान द्वारा इलैक्ट्रान् आदि की उपयुक्त संख्या निर्धारित रूप में जानलीगई है, ऐसे ही प्रत्येक ऊर्जा के अणु में कितने इलैक्ट्रॉन् आदि का उपयोग है, इसका निर्धारण होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है, तो क्या इलैक्ट्रान आदि के समान ऊर्जा को अतिरिक्त मूलतत्त्व मानाजाना चाहिये? ऐसी मान्यता को अभीतक कोई अवसर प्राप्त नहीं होसका है।

इससे अतिरिक्त एक अन्य व्यवस्था यह हो सकती है, कि ऊर्जा क्योंकि एक शक्तिरूप पदार्थ है, इस कारण इलैक्ट्रान् आदि मूल तत्त्वों में वह अनभिव्यक्त रूप से समवेत [निहित] रहता है, जो मूलतत्त्व का ही स्वरूप है। वस्तुतः मूलतत्त्व में जो विविध शक्तियां अन्तर्हित रहती हैं, उनका जानना समझना साधारणबुद्धिगम्य नहीं है, असाधारण मेधा भी उनके अंशमात्र तक ही पहुंच पाती है। उन शक्तियों का केवल वह स्वरूप जानने में आपाता है, जो मूलतत्त्वों के किसी विशिष्ट वस्तुस्वरूप में आजाने पर वहां अभिव्यक्त हो जाता है,।

मूलतत्त्व में निहित समस्त शक्तियों की गणना करना मानव बुद्धि के बाहर है। मूलतत्त्वों से जब किसी वस्तु का रूप उभरकर आता है, तब विशिष्ट दशाओं एवं वस्तुओं में किसी एक शक्ति का अभिव्यञ्जन होजाता है। वस्तुओं के अनन्त रूप हैं, एवं उनमें विभिन्न अनन्त शक्तियां हैं, वे उन मूलतत्त्वों से सर्गरचनाक्रम में बराबर प्रवाहित होती चली आ रही हैं। किसी एक वस्तुस्वरूप में कोई शक्ति अभिव्यक्त हो जाती है। उस अभिव्यक्ति की दशा में मानव अपनी मेधा द्वारा उसका अनुभव तथा कार्यों में उपयोग करता है।

इस विवेचन से यह परिणाम सामने आता है, कि मूल उपादान तत्त्व वस्तुरूप पदार्थ है, उसमें विविध शक्ति निहित है। वस्तुतत्त्व को सुविधा के साथ यथार्थरूप में समझने के लिये यदि शक्ति और शक्तिमान् अथवा गुण और गुणी या गुण और द्रव्य की व्यावहारिक परिभाषाओं को मान्यता दीजाती है; तो यह स्पष्ट है, कि मूलतत्त्वों में निहित शक्तियां उनके गुण हैं। वे गुण उस वस्तु तत्त्व को छोड़कर अलग नहीं रह सकते। और न वे गुण अथवा शक्ति-पदार्थ स्वयं वस्तु के रूप में कभी उभरते हैं; ऐसी वस्तु के रूप में, जो जगह घेरती है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान द्वारा प्रस्तुत पदार्थ विवेचन की यह स्थिति वैशेषिक द्वारा प्रतिपादित पदार्थ-प्रक्रिया से कुछ दूर या अलग नहीं है।

विश्व का उपादान तत्त्व — इस अवसर पर एक बात और ध्यान देने योग्य है। आधुनिक विज्ञान की मान्यता है, कि एक ऊर्जा दूसरी ऊर्जा के रूप में परिवर्त्तित हो जाती है। यह भी सुनने में आता है, कतिपय वैज्ञानिकों ने ऐसी स्थापना का प्रयास किया है, कि ऐनर्जी [ऊर्जा] को मैटर [वस्तुतत्त्व] में तथा मैटर को ऐनर्जी में परिवर्त्तित कियाजासकता है। यदि यह ठीक है, तो निश्चितरूप से कहाजासकता है, कि ऐनर्जी और मैटर का मूल उपादानतत्त्व एक ही है। अथवा मूल में दोनों एक हैं।

इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिये, आधुनिक विज्ञान समस्त विश्व का उपादान कारण—प्रोटोन इलैक्ट्रान् न्यूट्रॉन्—नामक तीन प्रकार के तत्त्वों को मानता है। इनकी परिभाषा बताता है, प्रोटोन तत्त्व आकर्षण शक्ति का पुञ्ज है। इसके विपरीत इलैक्ट्रान् अपकर्षण-स्वरूप है। पहला अपनी ओर दूसरे को आकृष्ट करता है, पर दूसरा अपने को अपकर्षण [दूर हटने या रहने] में प्रवृत्त रखता है, इनको यथाक्रम पाजिटिव और नैगेटिव पावर कहा जाता है। तीसरे तत्त्व न्यूट्रॉन् में ये दोनों बात नहीं होतीं। समस्त विश्व के मूल में ये ही पदार्थ हैं, इन्हींसे सब जगत् बना है।

भारतीय दर्शन में मूलतत्त्व 'सत्त्व-रजस्-तमस्' माने हैं। समस्त जड़ जगत् इन्हीं तत्त्वों से परिणत होकर बना है। दर्शनकार कपिल ने इनका स्वरूप इसप्रकार बताया है। सत्त्व प्रीतिरूप है; प्रीति का अर्थ है, दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करना। इसके विपरीत रजस् अप्रीतिरूप है, दूर हटने की प्रवृत्ति रखता है। तीसरा तमस् विषादरूप है, अर्थात् न प्रीतिरूप है और न अप्रीतिरूप। मूलतत्त्व के विषय में ये दोनों [आधुनिक विज्ञान और भारतीय दर्शन] कितनी अधिक समान परिभाषा को प्रस्तुत करते हैं, यह ध्यान देने योग्य है। यह स्थिति मूलतत्त्व-विषयक जानकारी की सचाई को प्रकट करती है।

इस सन्तुलन के आधार पर न हम यह कहना चाहते हैं, कि आधुनिक विज्ञान ने जो आज कहा है, उसे तत्त्वचिन्तक भारतीय ऋषियों ने पहले ही कह दिया था; और न हमारी इसमें आस्था है, कि कौन बात पहले कही गई तथा कौन अब। यहां केवल सचाई को खोजना और समझना ही मुख्य लक्ष्य है। इसके साथ उक्त सन्तुलन का यह अभिप्राय भी न समझना चाहिये, कि 'सत्त्व-रजस्-तमस्' यथाक्रम सर्वात्मना 'प्रोटोन्-इलैक्ट्रॉन्-न्यूट्रॉन्' हैं। आधुनिक विज्ञान ने सर्गरचना-क्रम में जिस स्तर पर विद्यमान इन तत्त्वों को समझने का यत्न किया है; सम्भव है, भारतीय दर्शनकार ऋषियों का चिन्तन उससे अधिक मूल अवस्था की ओर हो। पर इसमें सन्देह नहीं, कि दोनों विचारधारा मूलतत्त्व के

वास्तविक ठिकाने पर पहुंची हैं।

पृथिवी का गुण रूप

वैशेषिक के अनुसार रूप गुण तेजस्-आपस् और पृथिवी में समवेत बताया गया है। तेजस् में भास्वर शुक्ल रूप है, आपस् में अभास्वर शुक्ल तथा पृथिवी में सात प्रकार का रूप मानागया है। जो इसप्रकार है—श्वेत, रक्त, हरित, नील, पीत, कपिश, चित्र। वैशेषिक के प्रक्रियाग्रन्थों में निर्दिष्ट यह रूपक्रम ध्यान में रखना चाहिये। रूप-निर्देश का यह क्रम रूप-विषयक विशेष स्थिति का संकेत करता है।

आधुनिक विज्ञान ने रूप (रंग) के विषय में एक विशेष परिस्थिति का उद्बोधन कराया है। वह कहता है, विभिन्न प्रकार का रूप सूर्य-किरणों में पायाजाता है। इस कारण यह तेजस् अथवा प्रकाश का धर्म है। अन्य पदार्थ जो रूपयुक्त प्रतीत होते हैं, वह प्रकाश का प्रभाव व चमत्कार समझना चाहिये। वातावरण में जब सूक्ष्म फुहार [जलकण] भरे हों, तब यदि सूर्य पूर्वक्षितिज की ओर है, तो पच्छिम की ओर की फुहारों में; और सूर्य यदि पच्छिम क्षितिज की ओर है, तो पूर्व ओर की फुहारों में सूर्यकिरण प्रतिबिम्बित होकर सतरंगी रेखाओं को धनुषाकार में प्रकट करती हैं। इन रेखाओं को भारतीय परम्परा में 'इन्द्रधनुष' कहाजाता है।

भारतीय साहित्य में आधिभौतिक दृष्टि से इन्द्र पद सूर्य के लिये तथा वर्षा के अधिष्ठातृदेव के लिये प्रयुक्त होता है। इस भावना में सतरंगी रेखाओं का सूर्यकिरणों से स्पष्ट सम्बन्ध ज्ञात होता है। आंग्लभाषा में इसके लिये पद Rain-Bow [रेन्-बो] है, जो इन रेखाओं का सम्बन्ध वर्षा से प्रकट करता है। संभव है, वर्षा ऋतु में इन सतरंगी रेखाओं के प्रायः अधिकता से देखे जाने के कारण उसे यह नाम [Rain Bow] दिया गया हो। इन्द्रधनुष में सात रंगों का क्रम ऊपर से नीचे की ओर इसप्रकार दिखाई देता है—

लाल	Red	[रेॅड]
नारंगी	Orange	[ओरेंज]
पीला	Yellow	[यलो]
हरा	Green	[ग्रीन]
नीला	Blue	[ब्ल्यू]
आसमानी	Indigo	[इन्डिगो]
बेंजनी	Violet	[वायोलेट]

आधुनिक विज्ञान का कहना है, कि न केवल ये सात रूप, अपितु प्रकृति में पाये जानेवाले समस्त रूप तीन प्राथमिक रूपों–लाल, हरा और नीला–से मिलकर बनते हैं। इन तीन प्राथमिक रूपों को मिलाने की दो विधियां हैं। एक–योज्य विधि [Additive Method ऐडिटिव मैथड्] तथा दूसरी–शेष विधि [Subtractive Method सब्ट्रैक्टिव् मैथड्]। इसके अतिरिक्त इन दोनों विधियों के सम्मिलित प्रभाव द्वारा भी नये रूप बनते हैं।

१. **योज्य विधि**—इस विधि में रूपयुक्त [रंगीन] प्रकाश मिलाया जाता है। यदि सफेद दीवार या चादर पर दो भिन्न रूपों का प्रकाश पड़े, तो वहां एक अन्य रूप की प्रतीति होती है। लाल और हरे रूप का प्रकाश मिलाया जाय, तो पीला दिखाई देता है। सभी रूप उपर्युक्त तीन प्राथमिक रूपों को विभिन्न अनुपात में मिलाने से बनते हैं। तीनों रूपों को एक विशेष अनुपात में मिलाने से सफेद रूप बनजाता है।

पूरक रूप (Complimentary Colours=**कम्प्लिमैन्टरी कलर्स्**)—तीन प्राथमिक रूपों–लाल, हरा और नीला में से किन्हीं दो रूपों को मिलाने से जो रूप बनता है, उसे तीसरे रूप का पूरक रूप कहाजाता है। पीला रूप नीले रूप का पूरक है; क्योंकि पीला रूप, शेष दो प्राथमिक रूप–लाल और हरा–मिलाने से बनता है। किसी रूप में उसका पूरक रूप मिला देने से तीनों रूप इकट्ठे होजाते हैं, और सफेद रूप बनजाता है। इसीलिये इसका नाम 'पूरक रूप' कहाजाता है। किसी रूप को सफेद बनाने के लिये जिस रूप की कमी होती है, उसे पूरक रूप पूरा करता है। निम्न समीकरणों द्वारा इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं।

लाल + हरा + नीला = सफेद
लाल + हरा = पीला = नीले का पूरक
अब नीला + नीले का पूरक = नीला + पीला
= नीला + लाल + हरा
= सफेद

इसप्रकार लाल और नीला मिलाने से मंजीठा [Magenta=मजेंटा] रूप बनता है, यह हरे रूप का पूरक होगा। ऐसे ही हरा और नीला मिलाकर आसमानी [Cyan=सिआन] रूप बनता है; लाल रूप का पूरक होगा। इस प्रसंग में रूप अथवा रंग से अभिप्राय रूपयुक्त अथवा रंगीन प्रकाश से है, किसी पदार्थ से नहीं। रूपों के परस्पर मिश्रण की यह पहली 'योज्य विधि' है।

२. **शेष विधि**—इस पद्धति में रूपयुक्त पदार्थ मिलाये जाते हैं, चाहे वे पार-

दर्शी हों अथवा अपारदर्शी। रूपयुक्त पदार्थ सफेद प्रकाश में से किसी रूप का प्रकाश हटा सकते हैं, उनमें रूप [रूप का प्रकाश ?] जोड़ने की क्षमता नहीं होती। इसलिये यह विधि 'शेष विधि' कहलाती है।

शेष विधि में सफेद प्रकाश में से तीन प्राथमिक रूप [लाल, हरा और नीला] हटाये जाते हैं। किसी वस्तु पर रंगीन पदार्थ का लेप, रंगीन छपाई, या रंगीन फोटोग्राफी शेष विधि के कारण ही रंगीन दिखाई देते हैं। इनमें तीन प्राथमिक रंग के पदार्थ होते हैं। जिनके रंग आसमानी (Cyan), मजेंटा तथा पीला हैं। ये तीनों रंग योज्य विधि के पूरक रंग हैं। रंगीन छपाई में भी इन्हीं तीन रंगों की स्याहियां प्रयुक्त होती हैं। इन रंगों को इनके अवयवों द्वारा, या उस रंग द्वारा व्यक्त किया जासकता है, जो सफेद प्रकाश में नहीं है; अर्थात् उसमें से रंगीन पदार्थ द्वारा हटा दियागया है। उदाहरण के लिये :—

पीला = लाल + हरा = — नीला

इसका तात्पर्य हुआ, सामने पीला-रंगीन पदार्थ दिखाई दे रहा है, उसने अपने पर पड़ने वाले सफेद प्रकाश में से नीला हटा दिया है; शेष लाल और हरा रह-गया है। वे मिला देने से पीला बनजाता है, इसी कारण पदार्थ पीला दीखता है। इसीप्रकार जब पदार्थ मजेंटा है, तब — मजेंटा = लाल + नीला = — हरा; समझना चाहिये सफेद प्रकाश में से उस रंगीन पदार्थ ने हरे रंग को हटा दिया है। ऐसे ही—सिआन = हरा + नीला = — लाल; यहां सिआन रंगीन पदार्थ ने सफेद प्रकाश में से लाल रंग को हटा दिया है; अतः ऐसे प्रकाश से प्रकाशित वह पदार्थ सिआन रंग का दिखाई दे रहा है।

सफेद प्रकाश में से तीनों रंग निकाल लेने से काला दिखाई देता है। अर्थात् कोई प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता, [यहां भी 'रंग' का अर्थ रंगीन प्रकाश है।][1]

सप्तरश्मि सूर्य—आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं के अनुसार प्रस्तुत विवरण द्वारा स्पष्ट कियागया, कि सब प्रकार का रूप प्रकाशगत धर्म है। प्रकाश के केन्द्र सूर्य की किरणों में सात प्रकार के रूप देखने में आते हैं, जिनका उल्लेख प्रथम कर दियागया है। रूपविषयक यह मान्यता भारतीय ज्ञान-परम्परा में

---

१. रूप-विषयक यह विवरण 'हिन्दी विश्वकोष' में 'रंग' पद पर दियेगये विवरण के आधार पर है। वहां सर्वत्र विवरण में 'रंग' अथवा 'रंगीन' पदों का प्रयोग हुआ है। यहां उनके स्थान पर अनेकत्र 'रूप' तथा 'रूपयुक्त' पदों का प्रयोग कर दिया है; क्योंकि भारतीय दर्शन में अभिमत प्रस्तुत अर्थ के लिये इसी पद का प्रयोग मान्य है।

अविदित नहीं है। भारत के अतिप्राचीन साहित्य वेदों में अनेकत्र[1] सूर्य के लिये 'सप्तरश्मि' पद का स्पष्ट प्रयोग हुआ है। निर्धारित 'सप्त' संख्या का प्रयोग पदार्थ की किसी विशेषता पर ही आधारित होसकता है। वह विशेषता सूर्य रश्मियों में सप्तविध रूप के अस्तित्व के अतिरिक्त और कुछ कल्पना नहीं कीजासकती।

भारतीय साहित्य में 'सप्तरश्मि' पद के अतिरिक्त सूर्य के अर्थ में 'सहस्र-रश्मि' पद का प्रयोग बहुतायत से देखा जाता है। यद्यपि वेदों में यह पद प्रयुक्त नहीं है; पर वहां इसी अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले 'सहस्रशृङ्ग' पद का अनेकत्र प्रयोग हुआ है।[2] इससे जिज्ञासा होती है, क्या 'सप्तरश्मि' पद के समान 'सहस्रशृङ्ग' पद के लिये कोई ऐसा आधार है, जिससे सूर्य के सहस्र शृङ्ग अथवा रश्मि का प्रामाणिक व्याख्यान कियाजासके? वस्तुतः इस विषय में यह स्पष्ट है, कि 'सप्त' पद एक नियत संख्या का बोध कराता है। इसकी तुलना में 'सहस्र' पद अपरिमित संख्या का वाचक है। वह नियत सहस्र संख्या का बोध नहीं कराता। वेद के व्याख्याकारों ने उक्त पद का यही अर्थ किया है; लोक व्यवहार में भी इस पद का प्रयोग ऐसे ही अर्थ में होता है। फलतः अपरिमित किरणों वाले सूर्य का 'सप्तरश्मि' नाम किसी विशेष आधार का द्योतक है, जिसके अनुसार इस नाम की सार्थकता स्पष्ट होती है। वह आधार है, सूर्य किरणों का सप्तविध–रूपयुक्त होना।

कणाद का तेजस् द्रव्य—ऐसी स्थिति में यह गम्भीरतापूर्वक विचारणीय होजाता है, कि कणाद ने तेजस् द्रव्य को एक भास्वर-शुक्ल रूपयुक्त किस आधार पर कहा है। विचारने पर तथा आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी यह स्पष्ट है, कि जहां सब रूप मिलजाते हैं, वह सफेद [शुक्ल] दीखता है। क्योंकि रूप का आधार प्रकाश है, इसलिये वह प्रकाश शुक्ल रूपयुक्त होगा। प्रकाश की जो प्राकृतिक रचना है, वह समस्त रूपों के साथ है, अतः प्रकाश निरन्तर शुक्लरूप युक्त रहेगा। उसे इसप्रकार फाड़ा नहीं जासकता, कि यह नीला प्रकाश है, और यह पीला। यह कहना, कि रंगीन पदार्थ पर जब प्रकाश पड़ता है, तो वह पदार्थ प्रकाश के अन्य विजातीय रूप को अवशोषित करलेता है, और उस प्रकाश में रंगीन पदार्थीय रूप अवभासित होता है, नितान्त विलष्ट कल्पना है।

१. द्रष्टव्य, ऋ० १।१६४।१।।२।१२।१२।।४।५०।४।।६।४४।२४।। अथर्व ६।५१।१५।। ११।१।३६।।१६।५३।१।।२०।३४।।१३।। तै० ब्रा० २।८।२१।७।। जै० उ० ब्रा० १।६।१।२।।१।६।२।७–८।।

२. ऋ० ७।५५।७।। अथर्व० ४।५।१।। १३।१।१२।।

पहले यह विचारना चाहिये, कि पदार्थ रंगीन कैसे है ? रंग या रूप तो केवल प्रकाश का धर्म है। वह पदार्थ में कैसे आया ? फिर यह भी ध्यान देने की बात है, आधुनिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ का रूपयुक्त होना किसी अन्य बाह्य निमित्त से होसकता है। प्रकाश निसर्गतः रूपयुक्त है। उसीको रूप का स्रोत कहाजासकता है, वह अन्य किसी नैमित्तिक स्थिति के पदार्थ से अभिभूत व अवशोषित होजाय, यह वस्तुस्थिति का शीर्षासन कर देने के समान है।

व्यवहार में देखाजाता है, फूल की एक पंखुड़ी में तीन-तीन चार-चार विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। प्रत्येक उतने अंश से प्रकाश किरण परावर्त्तित होकर चक्षु इन्द्रिय से संयुक्त होने पर उन-उन रूपों का पंखुड़ी के अलग-अलग भागों में प्रत्यक्ष होता है। क्या वह रूप पंखुड़ी में न होकर प्रकाश में स्वीकार करना चाहिये ? प्रकाश न रहने पर क्या पंखुड़ी में रूप का अस्तित्व नष्ट हो जाता है ? इस विषय के एक विद्वान् से चर्चा होने पर उन्होंने कहा था, वस्तुतः फूल का वह रूप उस दशा में नष्ट होजाता है, नहीं रहता। क्या आधुनिक विज्ञान की वस्तुतः यही मान्यता है ? यदि ऐसी बात है, तो प्रकाश के अभाव में क्या वस्तु का भी नाश मानना होगा ? क्या न दीखने की दशा में देखनेवाले की आंख को भी समाप्त मानना होगा ? यह स्थिति गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है।

वस्तुतः प्रकाश सदा शुक्लरूपयुक्त है। देखने का साधन चक्षु इन्द्रिय किसी भी वस्तु को देखने के लिये प्रकाश की अपेक्षा रखता है। चक्षु रूप एवं रूपयुक्त वस्तु को देखसकता है। जब प्रकाश नहीं है, घोर अन्धेरा है, हाथ को हाथ नहीं सूझता; तब भी त्वक् इन्द्रिय के द्वारा वस्तु को स्पर्शकर पहचाना जासकता है; शब्द को श्रोत्र इन्द्रिय से सुनाजासकता है; रसन इन्द्रिय से स्वाद चखाजासकता है। इसका अभिप्राय है, प्रकाश का सहयोग केवल चक्षु इन्द्रिय द्वारा रूप तथा रूपयुक्त पदार्थ को देखने में होता है। इस रीति पर प्रकाश रूप का स्रोत है।

भारतीय दर्शन की मान्यता है, कि रूप का उद्भव सर्वप्रथम तेजस् द्रव्य द्वारा होता है। तेजस् द्रव्य सदा एकरूप युक्त इसीलिये रहना चाहिये, क्योंकि वहां सब रूप सम्मिलित रहते हैं, और उस सम्मिलन को किसी प्रकार विशृंखलित नहीं कियाजासकता। जैसा पहले कहा गया, समस्त वस्तुरूप पदार्थ पृथिवी-जल-तेज-वायु एवं इनके किसी प्रकार के विकाररूप में उपलब्ध होते हैं, जो जगह को घेरते हैं। जगह घेरनेवाला कोई पदार्थ इनसे अतिरिक्त नहीं है। सर्वप्रथम तेजस् द्रव्य में उद्भूत रूप का पृथिवी तक पहुंचना समझने के लिये इन पदार्थों के मूलतत्त्वों की ओर दृष्टिपात करना होगा।

पृथिवी में सात रूप—दर्शन के उच्चस्तरीय चिन्तन में पहुंच कर इस

भावना को प्रायः सब ओर से मान्यता प्राप्त रही है, कि कोई वस्तु जब अपने व्यक्तित्व में उद्भूत होती है, उससे पूर्व भी उसका अव्यक्त अथवा अनभिव्यक्त अस्तित्व रहता है। सर्वात्मना असत् का कभी सद्भाव संभव नहीं। तेजस् द्रव्य के उद्भव में आने पर जब रूप वहां प्रकाश में आता है, तब इसका तात्पर्य है, वह अपने मूल उपादान तत्त्वों से यथाक्रम यात्रा करता हुआ यहां आपहुंचा है। तेजस् और पृथिवी के उपादान तत्त्वों में से अनेक उपादान तत्त्व प्रत्येक में समान हैं। उन्हीं तत्त्वों से इन पदार्थों में रूप का उद्भव होता है। पृथिवी पदार्थ के प्रत्येक कण में उपयुक्त अनुपात से उन तत्त्वों का समावेश ठीक उसीप्रकार नहीं होता, जैसा तेजस् द्रव्य के कण में होता है। तेजस् में उपादान तत्त्वों के अनुपात के अनुरूप समस्त रूप व्यवस्थित क्रम से समवेत रहते हैं; परन्तु पृथिवी की रचना में वैसा अनुपात नहीं रहता, कि सर्वत्र समस्त रूपों का व्यवस्थित क्रम उद्भव में आये। जहां ऐसा होता है, वहां तेजस् के समान शुक्ल रूप अभिव्यक्ति में आयेगा। जैसे कपास का फोला। कपास के फोले में भी मूल उपादान तत्त्वों के विपर्यास से रूपान्तर होजाता है। समस्त वनस्पति जगत्—जो पूर्वोक्त पदार्थ की चार विधाओं का विकार है, विविध रूपों का आधार इसी कारण है। प्रत्येक पत्ते और फूल की पंखुड़ियों के विविध रूप उनके उपादान तत्त्वों के कारण हैं। प्रकाश केवल उनके देखने में चक्षु-साधन का सहयोगी होता है, इनके रूप का न उपादान है, न प्रयोजक।

पृथिवी-रूपों का निर्दिष्ट क्रम—वैशेषिक के प्रक्रिया-ग्रन्थों में पृथिवी के सात रूपों का जिस क्रम से उल्लेख रहता है, उसमें रूप गुणसम्बन्धी कुछ अन्तर्हित रहस्य की झलक प्रतीत होती है। क्रम है—शुक्ल, रक्त, हरित, नील, पील, कपिश, चित्र। गत पंक्तियों में आधुनिक विज्ञान निर्दिष्ट रूप विषयक मिश्रण विधि के निर्देश से स्पष्ट है, प्राथमिक तीन रूपों के आनुपातिक मिश्रण से अन्य विविध रूपों की प्रतीति हुआ करती है। जहां सब प्राथमिक रूप मिल जाते हैं, तब सफेद रूप प्रतीत होता है। क्योंकि समस्त रूपों का सर्वप्रथम उद्भव तेजस् तत्त्व में होता है, इसलिये तेजस् तत्त्व प्रकाशरूप से सदा श्वेत प्रतीत होता है। इसी कारण उक्त क्रम में सबसे पहले 'श्वेत' रूप का निर्देश है। वह श्वेत जिन प्राथमिक रूपों के समवाय–परस्पर मिथुनीभाव–से उभरता है, उनका निर्देश आगे किया गया—रक्त,हरित, नील। रक्त-हरित के मेल से पीत बनता है, अतः उनके आगे 'पीत' का निर्देश है। लाल और नीले को मिलाने से मजेंटा [मटियाला सा] रूप बनता है, उसको आगे 'कपिश' पद से निर्दिष्ट किया है। यह दिशा-मात्र बताकर अन्त में विविध रूपों के मेल से जो विभिन्न प्रकार के रूपों की

प्रतीति होती है, उसे 'चित्र' पद द्वारा अभिव्यक्त किया है।

विविध रूपों को वैशेषिक द्वारा पृथिवी में समवेत बताने का आधार अनुभव-मूलक व्यवहार है। यह तथ्य अनेकत्र स्पष्ट कर दिया गया है, कि कणाद का तत्त्व-विवेचन सर्गरचनाक्रम के उस स्तर से प्रारम्भ किया गया है, जिसमें प्राणी सांस ले रहा है। मानव तथा अन्य जीव-जगत् सीधा जिस वातावरण में रह रहा है, उसीको लक्ष्य बनाकर वैशेषिक का विवरण है। प्राणी पृथिवी, जल, तेज, वायु से घिरा है। उसके सब ओर प्रत्यक्ष में यही तत्त्व हैं। जगत् की इस स्थिति का जैसा अनुभव होता है, वैशेषिक के तत्त्व-विवेचन में वह एक मान्य आधार है।

उस अनुभव को भ्रान्तिपूर्ण समझना तथ्य न होगा। पार्थिव विकारों में रूप का अस्तित्व कारणगत विशेषताओं से ही उभार में आता है। प्रकाशनिष्ठ रूप को ही विभिन्न पदार्थों में प्रतीत होने की आधुनिक विज्ञान-निर्दिष्ट पद्धति नितान्त क्लिष्ट कल्पना है। वैशेषिक का पृथिवीगत रूप विषयक विवरण प्रत्यक्ष अनुभव के सर्वथा अनुकूल है।

सुवर्णादि धातु और पञ्चभूत—वैशेषिक शास्त्र की मान्यता है, कि समस्त जगत् की उत्पत्ति पांच भूतों अथवा चार प्रकार के परमाणुओं से होती है। इसलिये यह जगत् पाञ्चभौतिक अथवा चातुर्भौतिक है। आधुनिक तत्त्वविदों का कहना है, कि वैशेषिक की यह मान्यता ठीक नहीं है। क्योंकि अनेक पदार्थ ऐसे हैं, जिनमें पृथिव्यादि भूतों का कोई अंश नहीं है। उदाहरण के लिये सुवर्ण को लीजिये, इसका विश्लेषण करने पर अन्तिम कण तक यह केवल सुवर्ण है, इसमें अन्य किसी भूत आदि का कोई अंश या संमिश्रण उपलब्ध नहीं होता।

आधुनिक तत्त्वविदों का ऐसा कथन अनुपयुक्त नहीं है, पर सुवर्ण में पृथिवी आदि भूतों की तलाश करना ऐसा ही है, जैसे कपास के फोले में कुत्ते का ढूंढना। सर्ग-रचना के जिस स्तर पर सुवर्ण का क्रम आता है, उसके अनन्तर पृथिवी आदि के अणु-कणों की रचना होती है। आधुनिक विज्ञान-संमत ऐलीमेन्ट [Element -तन्मात्र] की रचना के अनन्तर पृथिवी आदि की रचना का क्रम आता है। सुवर्ण एक ऐलीमैन्ट है। उसमें पृथिवी आदि भूत का तलाश करना बेकार है।

इस सन्दर्भ में यह अवश्य विचारणीय है, कि सुवर्णादि धातुओं का अन्तर्भाव वैशेषिक द्वारा तैजस पदार्थों में मानेजाने का आधार क्या होसकता है? जगह घेरने वाले सब पदार्थों को वैशेषिक शास्त्र चार वर्गों में विभक्त करता है पृथिवी, जल, तेज, वायु, अति स्थूल पदार्थ पृथिवी वर्ग में, तरल जल वर्ग में, ज्वलनशील तेजस् वर्ग में तथा गैसिज् को वायु वर्ग में माना है। स्थूल पदार्थों में से धातु समुदाय को तैजस वर्ग में गिना गया है। ऐसा क्यों माना गया? इसका उपपादन

निम्न प्रकार संभव है।

विभिन्न पदार्थों से अग्नि का संपर्क होने पर सब जगह ताप का प्रभाव समान नहीं होता। विभिन्न पदार्थों में ताप के प्रभाव व गति के आधार पर पदार्थ दो भागों में बंट गये है। एक-कुचालक-Bad conductor दूसरा-सुचालक-Good conductor। काष्ठ आदि पदार्थ कुचालक हैं, अग्नि का संपर्क होने पर ताप को आगे बढ़ने से रोकते हैं। ताप की गति में बाधा उपस्थित करने से काष्ठ आदि का तेजस् से विजातीय होना प्रकट होता है। धातुवर्ग इससे विपरीत हैं, अर्थात् ताप का सुचालक है। सुवर्णादि धातु-पिण्ड या छड़ के एक भाग से तेजस् का संपर्क होने पर समस्त धातुपिण्ड आदि में ताप का संचार होजाता है। इससे धातुवर्ग ताप को अनुकूलता से चालित कर देने के कारण उसका सजातीय प्रमाणित होता है।

धातुवर्ग का तैजस-सजातीय होने में यह भी एक उपोद्बलक है, कि धातुवर्ग में ताप के अन्तर्भुक्त करने की शक्ति भी कम होती है। अर्थात् पदार्थ भिन्नजातीय होने से ताप को अधिक अन्तर्भुक्त करलेता है। एक यूनिट ताप के संपर्क से जल में या काष्ठ आदि में जो टैम्प्रेचर होगा, उतने ही ताप से धातु में कई गुना अधिक टैम्प्रेचर होगा। यह स्थिति धातु समुदाय को तैजस वर्ग में माने जाने के लिये बाधित करती है।

पञ्चतत्त्व अथवा पञ्चभूत—गत पंक्तियों द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया, कि मूलभूत पञ्चतत्त्वों की मान्यता का वास्तविक आधार क्या है। जगद्रचना की यात्रा में संलग्न तत्त्वों के मूलस्थान एवं मूलरूप को खोजने के लिये अति प्राचीन काल से मानव द्वारा महान एवं सफल प्रयत्न होते रहे हैं। चिन्तनशील मानव ने उसकी जानकारी के लिये स्थूल जगत् से प्रतियात्रा प्रारम्भ की। कतिपय तत्त्वविद् मनीषियों ने लोककल्याण की भावना से जनसाधारण की ज्ञानग्रहण क्षमता का विचार करते हुए तत्त्वों की सर्वाधिक स्थूल स्थिति के प्रथम कण से जगत् की व्याख्या करने का सत्प्रयास किया। उन्होंने पृथिवी, जल, तेज, वायु के प्रथम कणों को मूलतत्त्व मानकर जो जगद्रचना-प्रक्रिया का विवरण प्रस्तुत किया है, उसका यह कारण नहीं है, कि वे तत्त्ववेत्ता मनीषी उस काल में उतना ही जानपाये थे, अथवा उनका इतना जान लेना भी उस अन्धकारमय या अज्ञानमय काल में बहुत महत्त्व रखता था, जबकि आज का केवल भौतिक वादी अहंमन्य मानव उनपर दया दिखाने की दृष्टि से उनके सत्प्रयासों को उक्त आधारों पर बढ़ावा देकर उनको उपहास का विषय बनाना चाहता है।

विचारपूर्वक देखा जाय तो उक्त रूप में उनके तत्त्व-विवेचन का मुख्य

आधार यही है, कि इस जगद्रचना के लिये मूलतत्त्व-यात्रा की लम्बी परम्परा के उतने ही अंश का विवरण उक्त आचार्यों ने उन तत्त्वज्ञानार्थी अधिकारियों की दृष्टि से प्रस्तुत किया, जो प्रारम्भिक स्तर पर वहीं तक जाने की क्षमता रखते थे। आगे कदम बढ़ाने का उन्होंने किसीको निषेध नहीं किया। वे तत्त्वों की वास्तविक स्थिति को जानते थे, उन्होंने ज्ञानपूर्वक ऐसा किया है, अज्ञानवश नहीं। उन मनीषियों का वह काल न अन्धकारमय था न अज्ञानमय। प्रत्येक दिशा में उनकी सतर्कता अनुकरणीय रही है, यह उनकी कृतियों से स्पष्ट है। निर्मूल विरोधी भावनाओं से रहित कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति उन क्रान्तदर्शी मनीषियों के अगाध ज्ञानाब्धि के अनुपम रत्नों का अवलोकन करसकता है।

कणाद गौतम के पञ्चतत्त्वप्रतिपादन का आधार—जिज्ञासु की योग्यता के अनुरूप शास्त्रीय अर्थ का प्रतिपादन उपयोगी होता है, इस भावना से प्रेरित होकर कणाद और गौतम ने अपने शास्त्रों का प्रवचन किया। इन शास्त्रों में प्रतिपाद्य विषय के क्षेत्र को व्यक्त जगत् के एक विशिष्ट अंश तक सीमित रक्खा गया है। इसीलिये गौतम ने व्यक्त जगत् की उत्पत्ति व्यक्त कारण से स्वीकार की है[1]। वात्स्यायन मुनि ने उस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—भूत कहे जाने वाले व्यक्त, परमसूक्ष्म पृथिवी आदि [पृथिवी के परमाणुरूप आद्य कण] से शरीर आदि अन्य व्यक्त द्रव्य उत्पन्न होते हैं। जो इन्द्रियों से जाना जाता है वह व्यक्त है, उसके समान होने से उसका कारण भी व्यक्त है। दोनों में समानता क्या है? रूप आदि गुणों का योग। रूप आदि गुणों से युक्त नित्य पृथिवी [परमाणु] आदि से रूपादि-गुणयुक्त शरीर एवं अन्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण से देखा जाता है, कि रूपादिगुणयुक्त जैसी मिट्टी होती है, वैसा ही घड़ा आदि द्रव्य उससे बनता है। इसीके अनुसार न देखे हुए का अनुमान कर लिया जाता है। मूल उपादान और उसके विकार में रूप आदि का अन्वय देखे जाने से अतीन्द्रिय पृथिवी [पृथिवी तत्त्व के परमाणुरूप आद्य कण] आदि की कारणता का अनुमान हो जाता है।

इस विवरण से स्पष्ट है, यह स्थूल जगत् जिस रूप में दीखता है, कणाद आदि आचार्यों ने उसीके आधार पर इसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है। इसमें सन्देह नहीं, कि इस स्थूल दृश्यमान पृथिवी के पीछे छोटे से छोटा पृथिवी का कण विद्यमान है। यह ऐसा ही स्वीकृत संमान्य मूलतत्त्व है, जैसे आधुनिक रसायन शास्त्र में ऐलीमैन्ट का कण। उस कण की रचना कैसे हुई है, इस विषय

१—द्रष्टव्य, गौतमीय न्यायसूत्र—'व्यक्ताद् व्यक्तानां प्रत्यक्षप्रामाण्यात्' [४।१।११]।

को कणाद ने अपने शास्त्र की सीमा में नहीं लिया। जैसे रसायनशास्त्र ऐलीमैन्ट के कण की रचना का विवरण प्रस्तुत नहीं करता, उसीको मूल मानकर आगे का विवेचन करता है। इस कारण दृश्यमान चारों भूततत्त्वों के परमसूक्ष्म कणों को ही जगत् का मूल मानकर कणाद ने उसके आगे का जगद्रचनाविषयक विवरण प्रस्तुत किया है। उसे इस विवेचन से कोई प्रयोजन नहीं, कि उन कणों की रचना कैसे होती है। इसी कारण उन्हें नित्य मान लिया गया है। फलस्वरूप यह समझना निराधार होगा, कि इससे आगे उन तत्त्वों के विषय में उन आचार्यों को जानकारी न थी, वस्तुतः ऐसा कहने या समझने वाले अपनी जानकारी का दिवालियापन ही प्रकट करते हैं।

जिन महान पारदर्शी तत्त्वविद् मनीषियों ने अथक परिश्रम एवं दिव्य मेधा के द्वारा उन गहन-गम्भीर अचिन्तनीय विषयों का विवेचन किया, संसार-अरण्य में भटकते मानव के लिये यथार्थ का पथ प्रशस्त किया, केवल लोक-कल्याण की भावना से जिन्होंने अपना स्पृहणीय जीवन ऐसे सत्प्रयासों के लिये अर्पण किया है, वे चाहे प्राचीन हैं या नवीन, हमारे लिये सभी वन्दनीय हैं। प्रायः देखा यह जाता है, कि पल्लवग्राहीपाण्डित्य के गर्वपूर्ण पचड़े में पड़े विद्वन्मन्य विभिन्न विज्ञानों के वास्तविक विवेच्य स्तर को जाने बिना प्राचीन-अर्वाचीन पदार्थविज्ञान के संघर्ष में फंसे रहते हैं। यथार्थता तक पहुंचने में यही बाधा सदा उनके सामने विशाची बनी आतंकित करती रहती है।

वैशेषिक का 'विशेष' नामक पदार्थ

प्रत्येक कार्य द्रव्य अन्य कार्य से भिन्न है, वैशेषिक शास्त्र में इस व्यवस्था का नियामक उस कार्य के अपने कारण-अवयवों को माना जाता है। किन्हीं नियत कारण-अवयवों से कोई कार्य उत्पन्न होता है। अन्य कार्य किन्हीं अन्य नियत-अवयवों से उत्पन्न होगा। तात्पर्य है—प्रत्येक कार्य का अन्य कार्य से भिन्न होने का नियामक उसका अवयव-भेद है। उन्हीं नियत अवयवों से कोई दो भिन्न कार्य उत्पन्न नहीं हो सकते। यह व्यवस्था उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म द्व्यणुक द्रव्य से लगाकर महत् द्रव्य पर्यन्त सर्वत्र लागू रहती है।

कार्य द्रव्य के लिये यह व्यवस्था ठीक है, परन्तु जो कार्य द्रव्य नहीं हैं, उनके लिये क्या व्यवस्था होगी? यह ज्ञातव्य है। वैशेषिक के अनुसार नौ द्रव्यों में आकाश, काल, दिशा, आत्मा मन ये नित्य द्रव्य हैं। पृथिवी, जल, तेज वायु नित्य भी हैं, और अनित्य भी। इनमें कार्यपृथिवी आदि अनित्य हैं, तथा परमाणुरूप पृथिवी आदि नित्य हैं। अनित्य द्रव्यों में अवयवभेद के समान कहीं गुण और क्रिया भी तदाश्रय

द्रव्यके अन्य द्रव्योंसे-भेदक मानेजाते हैं। नित्य द्रव्यों में भी आकाश के लिये शब्द गुण को द्रव्यान्तरों से भेदक कहा जा सकता है, परन्तु सर्वत्र यह व्यवस्था संभव नहीं। अतः नित्य द्रव्यों में भेदकरूप से अवयवभेद की सर्वथा असंभावना होने पर वहां एक ऐसे पदार्थ की कल्पना कीगई है, जो उन समस्त प्रत्येक अनन्त नित्य पदार्थ में समवेत रहता है। प्रत्येक पदार्थ में एक विशेष रहने से विशेष भी अनन्त हैं। वह विशेष स्वरूपेण स्वतः अन्य सब पदार्थों से भिन्न रहता है, उसका स्वरूप ही भेदक माना गया है, अतः उसके आगे अन्य किसी भेदक की कल्पना अनावश्यक है। इसीलिये इसे 'अन्त्य' कहा जाता है, सबसे अन्त में रहने वाला।

विचारणीय है, इसप्रकार के 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना करना कहां तक अपेक्षित व साधार है। जो बात विशेष नामक पदार्थ के स्वरूप के विषय में कही जाती है, वही उसके आश्रय-द्रव्य के विषय में क्यों नहीं हो सकती। प्रत्येक नित्य द्रव्य का अपना स्वतः एकमात्र व्यक्तित्व है, वह व्यक्तित्व अन्य कोई नहीं। उसका व्यक्तित्व ही उसको अन्य समस्त से भिन्न रखता है। ऐसा व्यक्तित्व अनित्य द्रव्य में संभव नहीं, क्योंकि प्रत्येक अनित्य द्रव्य अनेक अवयवों के सहयोग से बनता है। वहां स्व-तन्त्र एकमात्र व्यक्तित्व नहीं है। अतः वहां अवयवभेद को अन्य से द्रव्य का भेदक मानना आवश्यक है। इसके विपरीत स्व-तन्त्र व्यक्तित्व केवल नित्य द्रव्यों में संभव है। इसलिये नित्य द्रव्य का अपना एकमात्र व्यक्तित्व ही उसको अन्य समस्त से भिन्न रख सकता है। वहां अन्य 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना करना अनपेक्षित है। अथवा यह कहाजासकता है, कि नित्य द्रव्य के अपने एकमात्र व्यक्तित्व से अतिरिक्त 'विशेष' नामक कोई पदार्थ नहीं है।

संभव है, 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना के मूल में यह भावना रही हो, कि वस्तुगत्या पृथिवी आदि का आद्यकण परमाणु यद्यपि अन्य मूल तत्त्वों से उद्भव में आता है; फिर भी उस स्थिति को यहां-सीमित स्तर तक पदार्थ-विवेचना की भावना से—अन्तर्हित रख परमाणु को नित्य व मूलतत्त्व मानलिया-गया है। इस व्यवस्था को निर्बाध रखने के लिये आवश्यक है, कि प्रत्येक परमाणु में परस्पर व्यवच्छेद का नियमन हो। उसीके लिये 'विशेष' नामक पदार्थ को स्वीकार कियागया।

वैशेषिक का 'इन्द्रिय' विषयक विचार

सांख्य वेदान्त आदि अन्य भारतीय दर्शन तथा शेष प्रायः समस्त वाङ्मय में इन्द्रियों की संख्या ग्यारह बताई जाती है। इसके दो भेद हैं-बाह्य इन्द्रिय तथा आन्तर इन्द्रिय। आन्तर इन्द्रिय के विषय में सभी का ऐकमत्य है। वह आन्तर

इन्द्रिय 'मन' है। बाह्य इन्द्रियों को दो वर्ग में रक्खा गया है—ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय। ज्ञानेन्द्रिय पांच है -- घ्राण, रसन, चक्षु, त्वक् श्रोत्र। कर्मेन्द्रिय भी पांच हैं--वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, इन सब इन्द्रियों के अपने पृथक् कार्य हैं, अथवा कहना चाहिये, इनका उपयोग एक-दूसरे से सर्वथा पृथक् कार्य के लिये होता है, इसलिये बाह्य इन्द्रियों की दस संख्या अपरिहार्य है। विविध साहित्य में रूप से इनका उल्लेख उपलब्ध होता है।[1]

यद्यपि भारतीय विविध-विषयक साहित्य में ग्यारह इन्द्रियों का उल्लेख उपलब्ध होता है, परन्तु अनेकत्र छह इन्द्रियों का भी उल्लेख पाया जाता है। गीता [१५।७,९] में 'मनःषष्ठानीन्द्रियाणि' पदों द्वारा स्पष्ट रूप से छह इन्द्रियों का उल्लेख है। वे छह इन्द्रियां कौन-सी हैं, यह इसीके आगे नवम श्लोक में स्पष्ट किया है। उनका नाम लिखा है—श्रोत्र, चक्षु, स्पर्शन [त्वक्], रसन, घ्राण और मन। इनमें पहली पांच बाह्येन्द्रिय और छठा मन आन्तर इन्द्रिय है। इसीप्रकार महाभारत में अन्यत्र[2] भी इन्द्रियों की छह संख्या का निर्देश देखा जाता है।

संभवतः पौराणिक साहित्य का एक श्लोक छात्रावस्था से स्मरण है—

वने ऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते,
जितेन्द्रियाणां स्वगृहं तपोवनम्॥

ऐसे प्रसंगों में वस्तुतः पांच इन्द्रियों का उल्लेख ज्ञान-साधन की भावना से किया जाता है। वैशेषिक एवं न्याय का इन्द्रियविषयक विचार ज्ञान के साधन रूप में ही हुआ है। पांच बाह्य विषयों का ग्रहण करने के लिये बाह्य साधन पांच इन्द्रिय हैं। प्रमाणों की प्रवृत्ति में इन्हींका उपयोग होता है। इनके साथ आन्तर इन्द्रिय मन है। अतः प्रकरणानुकूल होने के कारण इन दर्शनों में केवल छह इन्द्रियों का उपपादन हुआ है। अन्य के निषेध या अभाव में इसका तात्पर्य नहीं है।

---

१. सांख्यसूत्र, २।१९॥ सांख्यसप्तति, ३३॥ मनुस्मृति, २।८९–९२॥ प्रश्नोपनिषद्, ४।८॥ बृहदारण्यक उपनिषद्, ४।५।१२॥

२. 'चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि' म. भा उद्योग पर्व, ३६।४८॥ गोरखपुर-संस्करण।

पानी का जमना

वैशेषिक सूत्र [५।२।८] में जलों के संघात और विलयन का उल्लेख है। नैसर्गिक स्थिति के अनुकूल जलों की उपलब्धि तरल-रूप में होती है। सूत्रकार ने स्वयं इसका निर्देश किया।[1] इसके विपरीत जलों को बरफ या ओले आदि के रूप में पत्थर के समान कठोर जमा हुआ भी पायाजाता है। जिज्ञासा होती है, स्वभावतः तरल जल जम कैसे जाता है ?

मानव द्वारा अपनी प्रतिभा से उद्भावित आधुनिक विज्ञानमूलक उपाय जल को जमाने का इसप्रकार बतायाजाता है। उपयुक्त बन्द बृहत् पात्रों में जलों को भरकर उनके मध्य में नलियों द्वारा अमोनिया गैस को गुजारा जाता है। यान्त्रिक विधि से अमोनिया गैस पर जब धीरे-धीरे दबाव बढ़ता है, तब उसमें उत्तरोत्तर शीताधिक्य बढ़ता जाता है। शीत के उपयुक्त स्तर पर आने की दशा में पानी की तरलता तिरोहित होजाती है, और वह कुछ काल में ठोस जमजाता है। इसी-प्रकार के अन्य उपाय भी यान्त्रिक विधियों द्वारा इस कार्य के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। मानव द्वारा उद्भावित ये कृत्रिम उपाय हैं। देखना चाहिये, प्राकृतिक अवस्थाओं में यह कैसे होता है ? जहां पृथिवी और अन्तरिक्ष में विशाल समुद्र जैसे जमे देखे जाते हैं।

जलों का नैसर्गिक तरलभाव उनमें अनुकूल ताप के सहयोग से रहता है। उसमें थोड़ी-बहुत न्यूनाधिकता होने पर जल केवल न्यूनाधिक शीत व उष्ण प्रतीत होते हैं। यदि जलों में तीव्र ताप का सहयोग होगा, तो वे वाष्प के रूप में चले जायेंगे, तथा पुनः अनुकूल वातावरण पाकर अपने उसी नैसर्गिकरूपमें आ-जायेंगे। इसके विपरीत यदि अत्युग्र शीत के सहयोग से जलों की तरलता के अनुकूल ताप को अन्तर्हित कर दिया जायगा, तो तरलता भी अन्तर्हित होकर काठिन्य के उद्भव को अवसर मिलजायेगा। अन्तरिक्ष या पृथिवी पर जहां उतने स्तर का शीताधिक्य प्राकृतिक स्थितियों के अनुसार होजाता है, वहां जलों का तरलभाव अन्तर्हित होकर काठिन्य उभर आता है। यह केवल नैमित्तिक है। उस अनुकूल ताप के प्रतिरोधी निमित्तों के न रहने पर जल पुनः तरलभाव को ग्रहण करलेते हैं।

जलविषयक इस विवरण को अभिव्यक्त करने के लिये सूत्रकार ने यह सूत्र लिखा है—

अपां संघातो विलयनं च तेजःसंयोगात्।

१. रूपरसस्पर्शवत्य आपोद्रवाः स्निग्धाः, २।१।२॥

सूत्र में जलों के संघात [जमना] और विलयन [द्रवीभाव] दोनों के लिये 'तेजःसंयोग' एक ही निमित्त बताया है। यह संभव है, दोनों कार्यों के लिये 'तेजः-संयोग' परस्पर विलक्षण हों; जिससे दो विपरीत कार्यों के सम्पादन में सुविधा व अनुकूलता बनी रहे। प्रायः सभी व्याख्याकारों ने संघात और विलयन दोनों कार्यों के लिये 'तेजःसंयोग' को निमित्त माना है।

इस विषय में केवल एक व्याख्याकार चन्द्रकान्त भट्टाचार्य का सुझाव है, कि सूत्र को दो भाग में पढ़ना चाहिये। एक–'अपां संघातः'। दूसरा–'विलयनं च तेजःसंयोगात्'। पहले भाग के साथ 'शीताधिक्य' कारण का आक्षेप कर जलों के संघात का उसे कारण मानना चाहिये। विलयन का कारण 'तेजःसंयोग' सूत्र-पठित है। कृत्रिम उपायों से वातावरण को अधिक शीत बनाने में 'तेजःसंयोग' का उपयोग होना संभव है; और इस आधार पर संघात के लिये भी 'तेजःसंयोग' को निमित्तता की सीमा में लाया जा सकता है।

द्वितीय परिशिष्ट समाप्त।
इति श्री **उदयवीर–शास्त्रिणा** समुन्नीतस्य
वैशेषिकसूत्रभाष्यस्याऽनन्तरं संलग्नं
परिशिष्टद्वयं पूर्णतामगात्।

सूत्र–सूची

(अकारादिक्रमानुसार)

अ

अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनमणूनां मनसश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम् १९६

अज्ञानाच्च १२६

अणुमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणैर्व्याख्यातः २४५

अणुत्वमहत्त्वाभ्यां कर्मगुणाश्च व्याख्याताः २४६

अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषाभावाच्च २४३

अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः १७०

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते २४१

अतो विपरीतमणु २४३

अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः ३

अदुष्टं विद्या ३१०

अदृष्टाच्च २२९

अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् ७७

अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमुक्तम् ८०

अनित्यं इति विशेषतः प्रतिषेधभावः १६०

अनित्यश्चायं कारणतः ११३

अनित्येऽनित्यम् २४७

अनित्येष्वनित्या द्रव्यानित्यत्वात् २३६

अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् १७२

अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम् ६२

अनेकद्रव्यसमवायाद् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः १६३

अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः २६०

अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः ५८

अन्यदेव हेतुरित्यनपदेशः १२७

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ९७

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि २००

अपां संघातो विलयनं च तेजःसंयोगात् १९४

अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नोः १९५

अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् १८९

अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसन् सन्दिग्धश्चानपदेशः १३२

अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात् २३५

अप्सु शीतता ९६

अभिघातजे मुसलादौ कर्मणि व्यतिरेकादकारणं हस्तसंयोगः १७७

अभिघातान्मुसलसंयोगाद्धस्ते कर्म १७८

अभिव्यक्तौ दोषात् ११४

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय २१९

अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् १२९

अभूदित्यपि ३१६

अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावाद् विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद् यमस्य २२७
अयमेष त्वया कृतं भोजयैनमिति बुद्ध्यपेक्षम् २७६
अरूपिष्वचाक्षुषाणि १६५
अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु २८१
अर्थान्तरं च २२६
अविद्या १६०
अविद्या च विद्यालिङ्गम् २४८
अशुचीति शुचिप्रतिषेधः २२६
असतः क्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् २८६
असति चाभावात् २२८
असति नास्तीति च प्रयोगात् २६४
असदिति भूतप्रत्यक्षाभावाद भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् २८८
असमवायात् सामान्यकार्यं कर्म न विद्यते ४७
असमाहितान्तःकरणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च २६४
अस्येदमिति बुद्ध्यपेक्षितत्वात् ३०१
अस्येदं कार्यकारणसंबन्धश्चावयवाद् भवति २६७
अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि चेति लैङ्गिकम् २६६
अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः १५०
अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दवद् व्यतिरेकाव्यभिचारात् विशेषसिद्धेर्नागमिकः १५३
अहमिति शब्दस्य व्यतिरेकान्नागमिकम् १४७

आ

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची १०४
आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः २३२
आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च १७८
आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् २६३
आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः ३०२
आत्मसमवायादात्मगुणेषु २६५
आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म १७६
आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरे ऽकारणत्वात् २१०
आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे १६७
आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यते तदन्यत् १३४
आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् १४०
आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः ३११

इ

इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मयोः प्रवृत्तिः २३०
इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् १०१
इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या ३०६
इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः १२३
इषावयुगपत् संयोगविशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः १८५
इष्टानिष्टकारणविशेषाद् विरोधाच्च मिथः सुखदुःखयोरर्थान्तरभावः ३१३

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः २७०

उ

उगुक्तणाः २३४
उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि २०
उभयथा गुणाः २६

ए

एककालत्वात् २४४
एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते २५८
एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः २५७
एकदिक्काभ्यामेककालाभ्यां सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां परमपरं च २६८
एकदेश इत्येकस्मिन् शिरः पृष्ठमुदरं मर्माणि तद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ३१७
एकद्रव्यत्वात् २३८
एकद्रव्यत्वान्न द्रव्यम् १११
एकद्रव्यमगुणं संयोविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ३६
एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु दृष्टत्वात् ३१६
एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् २६०
एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः २०४
एतेन गुणत्वे भावे च सर्वेन्द्रियं ज्ञानं व्याख्यातम् १६६
एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि १०५
एतेन दीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते २४७
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् २३५
एतेन विभागो व्याख्यातः २६१
एतेन शब्दं व्याख्यातम् २६८
एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं व्याख्यातम् २१४
एतेनाघटोऽगौरधर्मश्च व्याख्यातः २६०
एतेनाप्सूष्णता व्याख्याता ६४

क

कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते २७
कर्मभिः कर्माणि २७०
कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणा अणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति २६२
कर्मभिः कर्माणि गुणैश्च गुणा व्याख्याताः २४६
कर्मसु भावात्कर्मत्वमुक्तम् ६४
कारणकारणसमवायाच्च ३२२
कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ८८
कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः २३६
कारणं त्वसमवायिनो गुणाः २०५
कारणपरत्वात् कारणापरत्वाच्च २६६
कारणबहुत्वाच्च २४२
कारणभावात् कार्यभावः १५८
कारणमिति द्रव्ये कार्यसमवायात् ३१८
कारणसमवायात् संयोगः पटस्य ३२२
कारणसामान्ये द्रव्यकर्मणां कर्माकारणमुक्तम् ५०
कारणाज्ञानात् १२५
कारणानुकृप्तिवैधर्म्याच्च ८६
कारणाभावात्कार्याभावः ५१
कारणायौगपद्यात् कारणक्रमाच्च घटपटादिबुद्धीनां क्रमो न हेतुफलभावात् २७८
कारणे कालः २५४

कारणेन कालः २०६
कारणे समवायात् कर्माणि ३१६
कार्यकारणयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावादेक-त्वैकपृथक्त्वं न विद्यते २५६
कार्यं कार्यान्तरस्य १२६
कार्यविरोधि कर्म ३०
कार्यविशेषेण नानात्वम् १०३
कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्श-वतामगुणः ८८
कार्येषु ज्ञानात् १२५
क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्य-लक्षणम् ३१
क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत् २८५
क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च ७८

ग

गुणकर्मसु गुणकर्माभावाद् गुणकर्मापेक्षं न विद्यते २७७
गुणकर्मसु च भावान्न कर्म न गुणः ६१
गुणकर्मसु सन्निकृष्टेसु ज्ञाननिष्पत्तेर्द्रव्यं कारणम् २७४
गुणत्वात् २६४
गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म ४५
गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् ११२
गुणान्तराप्रादुर्भावाच्च न व्यात्मकम् १६६
गुणैर्गुणाः २७०
गुणैर्दिग् व्याख्याता २०६
गुणैर्दिग् व्याख्याता २५४
गुणोऽपि विभाव्यते २६४
गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् ४६

च

चातुराश्रम्यमुपधा अनुपधाश्च २२४

ज

जातिविशेषाच्च २३०
ज्ञाननिर्देशे ज्ञाननिष्पत्तिविधिरुक्तः २७४

त

त आकाशे न विद्यन्ते ७२
तत्पुनः पृथिव्यादि कार्यं द्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् १६७
तत्र विस्फूर्जथुर्लिङ्गम् १६४
तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च १७०
तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे २७३
तत्त्वं भावेन ६१
तत्त्वं भावेन ६६
तत्त्वं भावेन १०२
तत्त्वं भावेन २७१
तत्समवायात् कर्मगुणेषु २६५
तत्संयोगो विभागः २३२
तथा गुणः ३८
तथा गुणेषु भावाद्गुणत्वमुक्तम् ६४
तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि १७८
तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च १०४
तथा दग्धस्य विस्फोटने १८२
तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् २६३
तथापस्तेजोवायुश्च रसरूपस्पर्शाविशे-षात् २८३
तथा पृथक्त्वम् २५६
तथा प्रतिग्रहः २०६
तथाऽभावे भावप्रत्यक्षत्वाच्च २८६
तथा रूपे कारणैकार्थसमवायाच्च ३२१

तथा विरुद्धानां त्यागः २१५
तथा स्वप्नः ३०२
तथा हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म १७७
तददुष्टे न विद्यते २१३
तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः स योगः १९८
तदनुविधानादेकपृथक्त्वं चेति ९२
तदभावादणु मनः २५३
तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः २०१
तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात् कर्मणः ८६
तद् दुष्टज्ञानम् ३१०
तद्दुष्टभोजने न विद्यते २११
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ८
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति ३२६
तद्विशेषेणादृष्टकारितम् १८८
तन्मयत्वाच्च २२९
तयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्याम् ३१५
तस्मादागमिकः १४७
तस्मादागमिकम् ८३
तस्य कार्यं लिङ्गम् १५८
तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते १४२
तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते १४६
तस्य समभिव्याहारतो दोषः २१२
तस्याभावादव्यभिचारः १६४
तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्योभयथा दृष्टत्वात् ११०
तृणे कर्म वायुसंयोगात् १८४
तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च २०३
तेजस्यूष्णता ९६
तेजो रूपस्पर्शवत् ७०
तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् १६४
त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णनाम्नि संयोगाद् द्रव्यत्वमद्भिः सामान्यम् ७३

द

दिक्कालावाकाशं च क्रियावद्धर्म्यान्निष्क्रियाणि २०३
दुष्टं हिंसायाम् २१२
दृष्ट आत्मनि लिंगे एक एव दृढत्वात् प्रत्यक्षवत् प्रत्ययः १४९
दृष्टं च दृष्टवत् १०७
दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय २१८
दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ३२४
दृष्टान्ताच्च २४५
दृष्टेषु भावाददृष्टेष्वभावात् २८१
देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छतीत्युपचाराच्छरीरे प्रत्ययः १५०
देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीरप्रयक्षोऽहंकारः १५१
द्रवत्वात् स्यन्दनम् १९०
द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ३७
द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिर्वैधर्म्यादभावस्तमः २०१
द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता ६०
द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् २५
द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ५८

द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो भावेन व्याख्यातः २७१
द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ९१
द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ९९
द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते १०२
द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ४४
द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम् २
द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ३४
द्रव्ये द्रव्यगुणकर्मापेक्षम् २७६
द्रव्येषु ज्ञानं व्याख्यातम् २७३
द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम् २८२
द्रव्येष्वनितरेतरकारणाः २७८
द्वयोस्तु प्रवृत्योरभावात् ११७
द्वित्वप्रभृतयः संख्याः पृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ४६

ध

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ११
धर्मविशेषाच्च १७३
धर्माच्च ३०६

न

न च दृष्टानां स्पर्शं इत्यदृष्टलिङ्गो वायुः ७७
न चासिद्धं विकारात् ११३
न तु कार्याभावात्कारणाभावः ५२
न तु शरीरविशेषाद् यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानं विषयः १५२
न द्रव्यं कार्यं कारणं च वर्धति २८
न द्रव्याणां कर्म ४३
नाड्यो वायुसंयोगादारोहणम् १९०
नापि कर्माऽचाक्षुषत्वात् प्रत्ययस्य १११
नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः २९२
नित्यं परिमण्डलम् २४८
नित्यवैधर्म्यात् ११३
नित्ये नित्यम् २४७
नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति १००
निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ८५
निष्क्रियत्वात् २६४
निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्यो निषिद्धः २०४
निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते २५७
नोदनविशेषादुदसनविशेषः १८०
नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम् १८०
नोदनाद्याभिषोः तत् कर्मकारिताच्च संस्कारादुत्तरं तथोत्तरमुत्तरं च १८६
नोदनापीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च १९१
नोदनाभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्यां कर्म १८७

प

परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः ८९
परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्वाभ्यां व्याख्यातः २६९
परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य ९१

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः २१३
पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तरा-
प्रादुर्भावो वस्त्रे गन्धाभावलिङ्गम् ९३
पृथिवीकर्मणा तेजःकर्म वायुकर्म च
व्याख्यातम् १९५
पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्य-
त्वादनित्याश्च २३४
पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि १५
प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः ८४
प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वात्
पञ्चात्मकं न विद्यते १६८
प्रथमाशब्दात् ११८
प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः १८०
प्रयत्ना यौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकम्
१४२
प्रवृत्तिनिवृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे
परत्र लिङ्गम् १३९
प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः १२३
प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य १३१
प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रि-
यान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेष-
प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि १४४

ब

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे २०७
बुद्धिपूर्वो ददातिः २०८
ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् २०७

भ

भावदोष उपघाऽदोषोऽनुपघा २२५
भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्य-
मेव ५५
भूतमभूतस्य १३०
भूतो भूतस्य १३०
भूयस्त्वाद् गन्धवत्वाच्च पृथिवी
गन्धज्ञाने प्रकृतिः २८२
भ्रान्तं तत् २५८

म

मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमित्यदृष्ट-
कारणकम् १८४
महत्यनेकद्रव्यवत्वात् रूपाच्चोपलब्धिः
१६१

य

यच्चान्यदसदतस्तदसत् २८७
यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद्
दृष्टं लिङ्गं न विद्यते १४६
यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः
४
यत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनम् १८२
यथादृष्टमयथादृष्टत्वाच्च १०७
यदि दृष्टमन्वक्षमहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त
इति १४८
यदिष्टरूपरसगन्धस्पर्शं प्रोक्षितमभ्यु-
क्षितं च तच्छुचि २२५
यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः १३२
यस्माद्विषाणी तस्माद्गोरिति चानै-
कान्तिकस्योदाहरणम् १३३
युतसिद्धयभावात् कार्यकारणयोः
संयोगविभागौ न विद्येते २६३

र

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ६७
रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेक-
त्वम् २५५

रूपरसगन्धस्पर्शा : संख्या: परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धय: सुखदु:खे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणा: १७
रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवा: स्निग्धा: ६६
रूपाणां रूपम् ४८

ल

लिङ्गाच्चानित्य: शब्द: ११७

व

वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ८१
वायोर्वायुसंमूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ८०
विद्याविद्यातश्च संशय: १०८
विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा २४६
विरोध्यभूतं भूतस्य १२६
विशिष्टे आत्मत्याग इति २१६
विषाणी ककुद्मान् प्रान्तेवालधि: सास्नावानिति गोत्वे लिङ्गम् ७४
वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् १६२
वेदलिङ्गाच्च १७५
वैदिकं च १६५
व्यतिरेकात् ४३
व्यवस्थातो नाना १५५
व्यवस्थित: पृथिव्यां गन्ध: ६५

श

शब्दलिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्च ६२
शब्दार्थावसम्बन्धौ २६५
शास्त्रसामर्थ्याच्च १५६
श्रोत्रग्रहणो योऽर्थ : स शब्द: १०६

स

संख्या : परिमाणानि पृथक्त्वं संगोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि १६५
संख्याभाव: सामान्यत : १२१
संज्ञा कर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम् ८४
संज्ञाया आदित्वात् १७४
संदिग्धा : सति बहुत्वे ११६
संप्रतिपत्तिभावाच्च ११६
संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ३२३
संयोगविभागयो: संयोगविभागाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यात: २६२
संयोगविभागवेगानां कर्म समानम् ४०
संयोगविभागाश्च कर्मणाम् ५०
संयोगादभाव: कर्मण: ८६
संयोगाद्वा ३१६
संयोगाद् विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्ति: ११६
संयोगानां द्रव्यम् ४८
संयोगाभावे गुरुत्वात्पतनम् १७६
संयोगिनो दण्डात् समवायिनो विशेषाच्च २६५
संयोगि समवाय्येकार्थसमवायि विरोधि च १२८
संशयनिर्णयान्तराभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतु : ३१४
संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् १८६
सच्चासत् २८७
सति च कार्यादर्शनात् ३१६
सतो लिङ्गाभावात् ११२

सत्यपि द्रव्यत्वे महत्त्वे रूपसंस्कारा-
भावाद् वायोरनुपलब्धिः १६२
सदकारणवन्नित्यम् १५७
सदनित्यं द्रव्यवत्कार्यं कारणं
सामान्यविशेषवदिति द्रव्यगुणकर्म-
णामविशेषः २२
सदसत् २८६
सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु
सा सत्ता ५९
सदिति लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गा-
भावाच्चैको भावः ६५
सन्त्ययोनिजाः १७४
सन्दिग्धस्तूपचारः १५०
सन्दिग्धस्तूपचारः १५१
समवायिनः श्वैत्यात् श्वैत्यबुद्धेश्च
श्वेते बुद्धिस्ते एते कार्यकारण-
भूते २७७
समाख्याभावाच्च १७३
समे आत्मत्यागः परत्यागो वा २१६
समे हीने वा प्रवृत्तिः २१४
सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयो-
गाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ७२
सामयिकः शब्दादर्थप्रत्ययः २६६
सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ८३
सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः १४७
सामान्यप्रत्यक्षाद् विशेषाप्रत्यक्षाद्
विशेषस्मृतेश्च संशयः १०६
सामान्यं विशेष इति बुद्धचपेक्षम् ५४
सामान्यविशेषापेक्षं द्रव्यगुण-
कर्मसु २७६
सामान्यविशेषाभावेन च ६१
सामान्यविशेषाभावेन च ६३
सामान्यविशेषाभावेन च ६४
सामान्यविशेषाभावेन च ६५
सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषा-
भावात्तत एव ज्ञानम् २७५
सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादै-
कात्म्यम् १५४
सुखाद्रागः २२८
सोऽनपदेशः १२५
स्पर्शवान् वायुः ७०
स्पर्शश्च वायोः ७५
स्वप्नान्तिकम् ३०३

ह

हस्तकर्मणा दारककर्म व्याख्या-
तम् १८१
हस्तकर्मणा मनसः कर्म व्याख्या-
तम् १९७
हीने परे त्यागः २१५
हेतुरुपदेशो लिङ्गं प्रमाणं करण-
मित्यनर्थान्तरम् ३००

विषय-निर्देशिका

(अकारादिक्रमानुसार)

अ

अक्रिय पदार्थों में क्रियानिरूपित समवाय नहीं २०४-०५

अक्रिय हैं-दिक्, काल, आकाश २०३

अणु की रचना (वैशेषिक) ३६६

अणुतत्व की रचना ३८५

अणुतत्त्वों की सारिणी ३८६-६६

अणु परिमण्डलाकार ३८८

अणु परिमाण क्या है २४३

अणु-महत् व्यवहार एक वस्तु में २४४

अत्यन्ताभाव का प्रत्यक्ष २६१

अत्यन्ताभाव क्या है २८७-८८

'अथ' पद का प्रयोग व अर्थ ३

'अदृष्ट' का तात्पर्य वृक्षों में १६२-६३

अदृष्ट कारण से कर्म १८४-८५

अदृष्टकारित क्रियाएँ २००

अदृष्टकारित क्रिया कहां १६६

अदृष्टकारित है पृथिवी-क्रिया १८८

अदृष्टकारित है वृक्षों में जलाभिसर्पण १६२

'अदृष्ट' की विशिष्ट व्याख्या २१६

अदृष्ट, धर्म-अधर्म २१८

'अदृष्ट' पद का तात्पर्य १८८-८६

अदृष्ट फल वाले कर्म २१६-२३

अदोष [समाज] का मूल धर्म २२४

अधर्म की ओर प्रवृत्ति २२८-३०

अधर्म, दृष्ट-अदृष्ट २१८

अधर्म में प्रवृत्ति, इच्छा द्वेषमूलक २३०-३१

अधिभूत रचना में तन्मात्र ४०५

अनित्य नहीं, मूलकारण १६०

'अनुपधा' का तात्पर्य २२५

अनुमान का प्रकार ७४-७५

अनुमान की परीक्षा २६६-६७

अनेकद्रव्य-समवेत गुण ४६-४७

अनेकद्रव्याश्रित नहीं, कर्म ४८

अनेक द्रव्यों का एक द्रव्य कार्य ४४

अनेक रूपों का कार्य, एक रूप ४६

अन्तराल दिशा १०५

अन्याश्रित है शक्ति ३८४

अन्योऽन्याभाव का प्रत्यक्ष २६०

अन्योन्याभाव क्या है २८७

अपरत्व-गुण परीक्षा २६८-७०

अभाव का प्रत्यक्ष कैसे २८८

अभाव द्रव्यादिरूप नहीं २८६

अभावप्रत्यक्ष में सन्निकर्ष २६२-६३

अभिघातज मुसल-कर्म में हस्तसंयोग कारण नहीं १७७

अभिव्यक्ति व उत्पत्ति ३७८

'अभ्युक्षित' पद का अर्थ २२६

'अभ्युदय' का अर्थ ६

अभ्युदय का मार्ग २२८

'अभ्युदय' क्या है ? ७

अयुतसिद्ध हैं, कार्य-कारण २६३

अयोनिज देह में प्रमाण १७२-७५

अरूपी द्रव्य में संख्या आदि गुण चक्षुर्ग्राह्य नहीं १६५

अर्थ का उपयुक्त वितरण 'दान' २१७

'अर्थ' पद के वाच्य २८१
अर्थक्रियाकारिता ३७८
अर्थ-प्रत्यक्ष के प्रयोजक १६१
अविद्या का स्वरूप ३१०
अविशेष से विशेष ४०६
'अशुचि' क्या है २२६-२७
अश्विनी एवं विद्युत् ४१३
असत्कार्यवाद ३७६
असत्कार्यवाद के उद्भावन का आधार ३८१
असत्कार्य, सत्कार्य का प्रतिद्वन्द्वी नहीं ३८१
असत्कार्य-स्वरूप ३७७
असमवायिकारण ३७३-७४
असमवायिकारण गुण-कर्म ३१६
असमवायिकारण गुण, द्रव्यादि तीनों का ३८
असमवायिकारण गुण होते हैं २०५
असमवायिकारण संयोग का, कर्म ४०

आ

आकाश, एक तत्त्व है ६१-६२
आत्मा का गुण नहीं, शब्द ८६-६०
आकाश का साधन ८५
आकाश क्रियाहीन है २०३
आकाश द्रव्य है, नित्य है ६१
आकाश ध्वनि का आश्रय ४११
आकाश परममहत्परिमाण २५०
आकाश में गन्धादि गुण नहीं ७२
आगमबोध्य नहीं केवल, आत्मा १५३
आत्मसिद्धि में दृष्ट लिङ्ग नहीं १४६
आत्मसिद्धि में शब्द प्रमाण १४७
आत्मसिद्धि में सामान्यतोदृष्ट हेतु १४७
आत्म-सिद्धि विवेचन १४८-५१
आत्मा और मन अप्रत्यक्ष २७३
आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान २६३
आत्मा के लिङ्ग १४४-४५
आत्मा, केवल आगमबोध्य नहीं १५३
आत्मा केवल शब्द प्रमाणसाध्य नहीं १४७-४८
आत्मा के सद्भाव में हेतु १२३-२४
आत्मा, क्या सब देहों में एक है ! १५४
आत्मा, जीवात्मा-परमात्मा दोनों १६
आत्मा द्रव्य है, नित्य है, १४६
आत्मा, प्रत्येक देह में भिन्न १५५
आद्य क्रिया से लक्ष्य तक पहुंचने, या पतन तक अनेक कर्म १८५-८६
आनन्तर्य में विशेष्य-विशेषणभाव नहीं २७८
आम्नाय का प्रामाण्य ८-६; ३२६-२७
आम्नाय [वेद] ईश्वर की रचना ६
आर्थिक सहयोग का त्याग २१५
आर्थिक सहयोग किन से न ले २१६
आर्थिक सहयोग व्यवस्थानुसार २१५
आर्थिक सहयोग सब को २१४
आर्थिक सहयोग स्वीकारने में विकल्प २१६
आर्ष-ज्ञान क्या है ३११
आश्रयनाश से द्रव्यनाश २६

इ

इन्द्र एवं विद्युत् ४१३

इन्द्रिय-अर्थ सम्बन्ध से कर्त्ता का बोध १२३-२४
इन्द्रिय-विचार ४३०
इन्द्रियों के विषय १२३

ई

ईश्वर के साधक, संज्ञा-कर्म ८४
ईश्वरोक्त होने से वेद प्रमाण १०

उ

उत्क्षेपण-कर्म के कारण ४६-५०
उत्पत्ति,गौतम-विचार ३७६
उत्पत्ति व अभिव्यक्ति ३७८
उदसन का कारण नोदन १८०
'उपधा' का तात्पर्य २२५
उपादान तत्त्व विश्व का ४१८
उपाधि और जाति १६
उष्णता, जल में औपाधिक ६४-६५
उष्णता, तेज में व्यवस्थित ६६

ऊ

ऊर्जा और वैशेषिक ४१६-१७
ऊर्जा के उपादान ४१७
ऊर्जा के भेद ४१४
ऊर्जा गतिज ४१५
ऊर्जा तत्त्व गुण है ४०६
ऊर्जा यान्त्रिक, वैशेषिक दृष्टि ४१६
ऊर्जा स्थितिज ४१४
ऊर्ध्वगति नोदन से १८०

ए

एक के श्रम का अन्य को फल नहीं २१०
एकत्व, एकत्व का न कार्य न कारण २५६
एकत्व में एकत्व नहीं २५७
एकपृथक्त्व, एकपृथक्त्व का न कार्य न कारण २५६
एकपृथक्त्व में एकपृथक्त्व नहीं २५७
एक रूप गुण के अनेक रूप कारण ४६
एक वस्तु में, एक काल में, अणु-महत् व्यवहार कैसे २४४-४५
एकादशक्षण-प्रक्रिया ३५३

ऐ

ऐककालिक अणु-महत् व्यवहार वस्तु में कैसे २४४-४५
ऐलीमैन्ट का वर्गीकरण ३८७
ऐलीमैन्ट मूलतत्त्व नहीं ३८६

क

कणाद का तेजस् द्रव्य ४२३
कणाद की भावना २
कर्म अक्रिय हैं २०४
कर्म, अनेकद्रव्याश्रित नहीं ४८
कर्म, असमवायिकारण ३१६-२०
कर्म असमवायिकारण, संयोग-विभाग-वेग का ४०
कर्म एक ही द्रव्य में होता है ४८
कर्म और संज्ञा ईश्वर के साधक ८४
कर्म, कर्म से उत्पाद्य नहीं २७-२८
कर्म का नाशक उसका कार्य ३०
कर्म का लक्षण ३६
कर्म [क्रिया] की उत्पत्ति १७६
कर्म, जिनका फल अदृष्ट है २१६-२३
कर्मज्ञान में कर्म-गुण विशेषण नहीं २७७
कर्म-ज्ञान में द्रव्य कारण २७५

कर्मज्ञान विशेषणयुक्त २७६
कर्मत्व-सामान्य कर्मों से भिन्न ६४-६५
कर्मत्व, सामान्यविशेष ५८
कर्म, द्रव्य और कर्म का कारण नहीं ५०-५१
कर्म, द्रव्य का असमवायिकारण नहीं ४३
कर्म-निर्देश और गणना २०-२१
कर्म में परिमाण नहीं २४७
कर्म में संख्या का व्यवहार भ्रान्त अथवा भाक्त २५८
कर्म में संख्या नहीं रहती २५७
कर्म, विभाग का असमवायिकारण ४०
कर्म, वेग का असमवायिकारण ४०
कर्मों का कार्य, कर्म नहीं ४५
कर्मों में कर्म नहीं २४६
कारण ३७०
कारण के अभाव से कार्याभाव ५१
कारण के भेद ३७३
कारणगुणपूर्वक हैं कार्यगुण ८८
कारणता का आधार कार्योत्पादन-क्षमता ५३
कारण तीन प्रकार के ४६
कारणद्वयविभागज कारणाकारण-विभाग ३५८-६०
कारणभेद से देहाङ्गों में भेद ३१७-१८
कारण-विचार ३१८-२३
कारण से ही कार्य १५८-५९
कारणाकारणविभागज कार्या-कार्यविभाग ३६१-६३
कार्य-कारण अयुतसिद्ध २६३
कार्य की बुद्धिसिद्ध सत्ता, उत्पत्ति से पूर्व ३७९-८१
कार्य के अनेक कारण ५२
कार्य के अभाव से कारणाभाव नहीं ५२
कार्य के गुण कारणगुणपूर्वक ८८
कार्यनाश से कर्म-कारणनाश ३०
कार्यमात्र में कारण, काल १०१
कार्य, मूलकारण का बोधक १५८
काल, एक तत्त्व है ९९-१००
काल, कार्यमात्र का कारण १००,२०६
काल के बोधक लिङ्ग ९७-९८
काल क्रियाहीन है २०३
काल द्रव्य है, नित्य है ९९
काल परममहत्परिमाण २५५
क्रियानिरूपित समवायक्रियाहीनों में नहीं २०४-०५
क्रियाहीन हैं दिक्, काल, आकाश २०३

ग

गतिज ऊर्जा ४१५
गन्ध, पृथिवी में क्या नैमित्तिक है ९३
गन्धादि गुण आकाश में नहीं ७२
गन्ध, पृथिवी में व्यवस्थित ९५
गन्धादि गुण, पृथिवी आदि में अपने ७१
गन्धादि गुण, पृथिवी के ६७-६८
गन्धादि पृथ्वी-गुण पाकज १८
गुण, असमवायिकारण २०५,३१९
गुण, असमवायिकारण कहां ३२१-२२
गुण असमवायिकारण, द्रव्य गुण-कर्म का ३८
गुण कतिपय, असमवायिकारण नहीं ३२३

गुण, कारणगुण का नाशक २९
गुण, कार्यगुण का नाशक २९
गुण का लक्षण ३४-३५
गुण क्रियाहीन हैं २०४
गुण, गुणान्तर के आरम्भक २६-२७
गुणग्राहक इन्द्रिय से गुणवृत्ति जाति का ग्रहण १६६
गुण, जो अनेक द्रव्यों में समवेत रहते हैं ४६-४७
गुणज्ञान में गुण-कर्म विशेषण नहीं २७७
गुणज्ञान में द्रव्य कारण २७५
गुणज्ञान विशेषणयुक्त २७६
गुणत्व-सामान्य गुणों से भिन्न ६४
गुणत्व, सामान्यविशेष ५८
गुण-नाश के कारण ३१
गुण, निमित्तकारण कहां ३२३
गुण-निर्देश और गणना १७-१९
गुण-परीक्षा का प्रारम्भ २३४
गुण में गुण नहीं २४६
गुण में परिमाण नहीं २४७
गुण में संख्या का व्यवहार भ्रान्त अथवा भाक्त २५८
गुण में संख्या नहीं रहती २५७
गुणों का विशिष्ट क्रम १९
गुरुत्व से जलों का पतन १८९
गुरुत्व से वस्तु का पतन १७९

घ

घ्राण का उपादान पृथिवी २८२

च

चक्षु का उपादान तेज २८३
'चित्र' रूप का विवेचन २३९-४०
चुम्बकत्व ४१४

ज

जगत्कर्त्ता ही वेदकर्त्ता ९
जगत् का दान (रचना) ज्ञान-पूर्वक २०८-०९
जगत् [-धर्म] ईश्वर की रचना ९
जन्म-मरण, धर्माऽधर्ममूलक २३२
जल का लक्षण ६९
जल के उपादान तत्त्व ४०१
जल जमता कैसे है ४३२
जल में उष्णता औपाधिक ९४-९५
जलाभिसर्पण वृक्षों में अदृष्टकारित १९२
जलारोहण नोदनापीडन से १९१
जलों का जमना पिघलना १९४
जलों का पतन गुरुत्व से १८९
जलों का बहना द्रवत्व से १९०
जलों में अग्निसंयोग का वेद-प्रमाण १९५
जलों में शीतता व्यवस्थित ९६
जाति [पर, अपर] क्या हैं ५४
जाति-बाधक कारण ५६-५७
जाति [सामान्य] और उपाधि १६
जीवात्मा अणु है २५४
ज्ञान, आत्मसिद्धि में लिङ्ग २७४
ज्ञान आत्मा से भिन्न है १२७
ज्ञान का आश्रय देहादि नहीं १२५
ज्ञानकारणक्रमानुसार ज्ञानक्रम २७८-७९
ज्ञान कैसे होता है २७४
ज्ञान-गुण परीक्षा २७३
ज्ञान में, पूर्वज्ञान कारण कहां २७९-८१

ज्ञान से आत्मा का अनुमान १२६

त

तत्त्व की चार विधा १-२
तत्त्वज्ञान का स्वरूप १२
तत्त्वज्ञान ले अभ्युदय १३
तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस १३-१४
तत्त्वों के ज्ञान का साधन १२
'तन्मात्र' का रचना स्तर ४०५
तन्मात्र से परमाणु-उत्पति ४०७
तमस् क्या है ? २०१-०२
तिर्यग् गति नोदन से १८०
तृणादि में कर्म वायुसंयोग से १८४
तेज का अभाव है तम २०१-०३
तेज का लक्षण ७०
तेज में उष्णता व्यवस्थित ९६
तेज में क्रिया के कारण १९५-९६
तेजस् द्रव्य, कणादप्रोक्त ४२३
'त्रिधातु' वैदिक पद ४०४
त्वक् का उपादान वायु २८३

द

दशक्षण-प्रक्रिया ३५२
दान [जगद्रचना] ज्ञानपूर्वक २०८-०९
'दान' वास्तविक क्या है २१७
दारक [स्तनपायी शिशु] की करचरणादि क्रिया १८१
दिशा, एक तत्त्व है १०३
दिशा का नाना होना कार्यभेद से १०३
दिशा का बोधक लिङ्ग १०१
दिशा के अन्तराल भेद १०५
दिशा क्रियाहीन है २०३,२०६
दिशा द्रव्य है, नित्य है १०२
दिशा परममहत्परिमाण २५४
दिशा, प्राची आदि कैसे १०४
दुःख का सुख से भेद ३१३
दुःखज्ञान के कारण १९७
दुर्बल आदि के लिये आर्थिक सहयोग २१४
दुर्बलों के प्रति वर्त्ताव २१४
दुष्ट कौन हैं २१२
दुष्टों का श्रेष्ठ-समान आदर, समाज में दोषोत्पादक २१२
दुष्टों द्वारा ऐश्वर्य भोग में, समाज का अभ्युदय नहीं २११
दृष्ट, धर्म-अधर्म २१८
देह-अयोनिज में प्रमाण १७२-७५
देह के दो प्रकार १७०-७१
देह नैभौतिक नहीं १६९
देह पाञ्चभौतिक नहीं १६८
देहभेद में भी ज्ञान समान १५२
देहभेद से आत्मभेद मे शब्द प्रमाण १५६
देहाङ्गभेद कारणभेद से ३१७-१८
दोष का मूल अधर्म २२४
द्रवत्व के कारण जलों का बहना १९०
द्रवत्व नैमित्तिक गुण पृथिवी में ७२
द्रव्य, अनेकों का कार्य ४८
द्रव्य एक कार्य, अनेक द्रव्यों का ४४
द्रव्य और गुणों का साधर्म्य २५
द्रव्य कारण है, गुण-कर्म ज्ञान में २७५
द्रव्य कार्य-कारण का नाशक नहीं २९
द्रव्य-कार्य, कारणसमूहमात्र नहीं ४४

द्रव्य-कार्य के उपादान सजातीय द्रव्य १६८-६९
द्रव्य, कार्यमात्र का समवायि-कारण ३७
द्रव्य-कार्योत्पत्तिमें विजातीय द्रव्य का सहयोग १७०
द्रव्य का लक्षण ३१-३४
द्रव्य के उपादान सजातीय द्रव्य २८२
द्रव्य-गुण-कर्म का असमवायिकारण गुण ३८
द्रव्य, गुण, कर्म का साधर्म्य २२-२५
द्रव्यज्ञान में, द्रव्य-गुण-कर्म विशेषण का ज्ञान अपेक्षित है २७७
द्रव्यज्ञान विशेषणयुक्त २७६
द्रव्यत्व-सामान्य द्रव्य से भिन्न ६२-६३
द्रव्यत्व, सामान्यविशेष ५८
द्रव्य, द्रव्यान्तर के आरम्भक २६
द्रव्यनाश, आश्रयनाश से २९
द्रव्यनिर्देश व गणना १५
'द्रव्य' पद व्याख्या १६-१७
द्रव्य विजातीय, किसी द्रव्य के उपादान नहीं २८२
द्रव्य, समवायिकारण ३१८
द्रव्य-समवायिकारण, सजातीय द्रव्य १६८-६९
द्रव्यादि-ज्ञान से निःश्रेयस ७१८
द्रव्यादितत्त्वज्ञान क्या है १२
द्रव्यादि धर्म-धर्मी हैं ५
द्रव्यादि पदार्थ-ज्ञान से निःश्रेयस ११
द्रव्यादि से भिन्न है सत्ता ६०
द्वित्व आदि का प्रत्यक्ष ३३१
द्वित्व संख्या की उत्पत्ति ३२९-३०
द्वित्वादि उत्पत्ति का प्रकार ३३२
द्वित्वोत्पत्ति-विवरण [तृतीय] ३३५-३६
द्वित्वोत्पत्ति-विवरण [द्वितीय] ३३४
द्वित्वोत्पत्ति-विवरण (प्रथम) ३३२-३३

ध

धर्म और धर्मी द्रव्यादि पदार्थ ५
'धर्म' और प्रशस्तपाद ५
'धर्म' और व्याख्याकार ७
'धर्म' का अर्थ यहां 'सत्-आचार' आदि नहीं ४
धर्म का स्वरूप ४, २१७
धर्म, दृष्ट-अदृष्ट २१८
धर्म में प्रवृत्ति, इच्छा द्वेषमूलक २३०-३१
धर्म, वस्तु-तत्त्व है ६
'धर्मविशेष' क्या है १३
'धर्मविशेष' योगज धर्म है १४
धर्मविशेष से तत्त्वज्ञान १३
धर्म-व्याख्यान की प्रतिज्ञा ३
धर्माऽधर्ममूलक हैं, जन्म-मरण २३२
धातुओं में 'द्रवत्व' नैमित्तिक ७३
ध्वनि ४१०
ध्वनि का आश्रय क्या ? ४११
ध्वनि के वाहक ४१०-१२
ध्वंसाभाव का स्वरूप २८६

न

नवक्षण-प्रक्रिया में विवेच्य ३४७-५१
नित्य का लक्षण १५७
निमित्तकारण ३७६
निरीश्वरवादी नहीं वैशेषिक ११

र

रस आदि जल के गुण ६६
रसन का उपादान जल २८३
रसादि ज्ञान के प्रयोजक १६४
रूप आदि तेज के गुण ७०
रूप जो पूरक है ४२१
रूप-निर्माण विधि ४२०-२१
रूप, फूलों में ४२४
रूप, विज्ञान की दृष्टि में ४२०
रूप सात, पृथिवी में ४२४
रूपादि गुण पृथिवी आदि में अपने हैं, अन्य संसर्ग से नहीं ७१
रूपी द्रव्य में संख्या आदि गुण चक्षुर्ग्राह्य १६५
रूपों का निर्दिष्ट क्रम ४२५
रूपोपलब्धि के प्रयोजक १६३

ल

लाइट् ४०६-१०
लिङ्ग-लिङ्गी का व्याप्य-व्यापक भाव २६७
लिङ्ग-लिङ्गीभाव किन का १२१

व

वर्णों की नियत संख्या १२१
वस्तु का प्रत्यक्ष, किस दशा में १६१
वस्तु के पतन का कारण १७६
वस्तु-तत्त्व ही धर्म है ६
वस्त्र में पुष्प-गन्धौषाधिक ६३
वायु का अनुमान सामान्यतोदृष्ट लिङ्ग से ८३
वायु का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं १६२
वायु का लक्षण ७०-७१
वायु का लिङ्ग स्पर्श ७५
वायु के अनुमान में दृष्ट लिङ्ग नहीं ८१-८२
वायु के घटक तत्त्व ४०१-०२
वायु द्रव्य है ७७-७६
वायु नाना है ८०-८१
'वायु' नाम वेदानुसार ८३
वायु [परमाणु] नित्य है ८०
वायु में क्रिया के कारण १६५-६६
वायु संयोग से तृणादि-कर्म १८४
वायुसंयोग से वाष्प का आरोहण १६०
वाष्प का वायुसंयोग से आरोहण १६०
वेज्ञान भेद के आधार ३८३-८४
विद्या का स्वरूप ३१०
विद्युत् ४१२
विद्युत् एवं अश्विनी ४१३
विद्युत एवं वैदिक इन्द्र ४१३
विद्युत् का प्राचीन काल में प्रयोग ४१३
विभाग का असमवायिकारण, कर्म ४०
विभागज-विभाग ३५७
विभाग में परिमाण नहीं २६२-६३
विभाग में विभाग नहीं रहता २६२
विभाग-विनाश विवरण ३६४-७०
विभागोत्पत्ति के कारण २६१
विशिष्टज्ञान में सर्वत्र विशेषणज्ञान कारण २७७-७८
विशिष्ट व्यक्तियों की ओर प्रवृत्ति २१३
विशेषणता सन्निकर्ष १३८-३६
'विशेष' नामक छठा पदार्थ ५८

'विशेष' पदार्थ ४२६
'विशेष' पदार्थरचना में एक स्तर ४०६
विशेष से पूर्व अविशेष ४०६
विश्व का उपादान तत्त्व ४१८
वृक्षों में अदृष्ट का स्वरूप १६२-६३
वृक्षों में जलाभिसर्पण अदृष्टकारित १६२
वेग का असमवायिकारण, कर्म ४०
वेगनाश सेपतन १८६
वेदमूलक हैं वैशेषिक सिद्धान्त १०
वेद में वाक्यरचना ज्ञानपूर्वक २०७
वेदरचना बुद्धिपूर्वक २०७
वेद सिद्धान्त, जगत् प्रयोग १०
वैदिक वाक्यकृति की ज्ञानपूर्वकता में प्रमाण २०७-०८
वैशेषिक-अणु की रचना ३६६
वैशेषिक एवं आधुनिक पदार्थ-विज्ञान ३८३-४२३
वैशेषिक का परम-अणु ३६७
वैशेषिक का विवेच्य ४०३
वैशेषिक दृष्टि, ऊर्जा-विषयक ४१६
'वैशेषिक' नाम का मूल ४०६-०७
वैशेषिक निरीश्वरवादी नहीं ११
वैशेषिक भौतिक शास्त्र १४
वैशेषिक सिद्धान्त वेदमूलक १०
व्यवस्थानुसार आर्थिक सहयोग २१५
व्याप्त हेतु अर्थ- साधक १३१
व्याप्तिरहित हेतु हेत्वाभास १३२-३४

श

शक्ति अन्याश्रित ३,४
शब्द अनित्य है ११३
शब्द अर्थ का सम्बन्ध २६४-६७
शब्द, आकाश का लिङ्ग ६१
शब्द, आत्मा का गुण नहीं ८६-६०
शब्द, कर्म नहीं १११-१२
शब्दका श्रोत्रग्राह्यत्व, शब्द के गुण होने में संशयजनक ११०
शब्द का स्वरूप १०६
शब्द की अनित्यता में लिङ्ग ११७
शब्द की अभिव्यक्ति में दोष ११४
शब्द की नित्यता में हेतु ११७-१६
शब्द गुण नहीं, स्पर्शवालों का ८८-८६
शब्द, द्रव्य नहीं १११
शब्दनित्यता के हेतु अनैकान्तिक १२०
शब्द नित्य नहीं ११२
शब्दप्रमाण की परीक्षा २६८-६६
शब्दप्रमाण से आत्मसिद्धि १४७
शब्द, मन का गुण नहीं ८६-६०
शब्दोत्पत्ति के कारण ११६
शास्त्र का उपक्रम १
शास्त्र का निगमन ३२४-२५
शास्त्र-सिद्धान्त वेदमूलक १०
शास्त्रीय मान्यताएँ ३४२-४४
शीतस्पर्श जलों में व्यवस्थित ६६
'शुचि' क्या है २२५-२६
शुचि-भोग से अभ्युदय कब नहीं २२७
शेष विधि, रूप की ४२१
श्रम का फल श्रमकर्त्ता को २१०-११
श्रेष्ठों के आदर में सामाजिक दोष नहीं २१३

स

संख्या एकत्व, रूपादि से भिन्न २५५
संख्या कर्म में समवेत नहीं २५७
संख्या गुण में समवेत नहीं २५७
संख्या, व्यासज्यवृत्ति ३३२
संज्ञा कर्म,ईश्वरसत्ता के बोधक ८४
संयुक्तसमवाय सन्निकर्ष १३६
संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष १३७
संयोग का असमवायिकारण कर्म ४०
संयोग की उत्पत्ति के कारण २६०
संयोगनाश से द्रव्यनाश २६
संयोग में परिमाण नहीं २६२-६३
संयोग में संयोग नहीं रहता २६२
संयोग विभाग के कारण ५०
संयोग-सन्निकर्ष १३६
संशय, अदृश्यमानधर्मिक १०७
संशय, आन्तरविषयक १०८
संशय का स्वरूप १०६
संशय, दृश्यमानधर्मिक १०७
सत्कार्य-असत्कार्यवाद प्रतिद्वन्दी नहीं ३८१
'सत्ता' एक जाति, द्रव्यादि तीनों में ६६
सत्ता, गुण-कर्म नहीं ६१
सत्ता जाति ५५-५६
सत्ता, द्रव्यादि से भिन्न ६०
'सत्ता' सामान्य का लक्षण ५६
सप्तरश्मि सूर्य ४२२
समवाय एकमात्र २७१-७२
समवाय का स्वरूप २७०-७१
समवाय न द्रव्य है न गुण २७१
समवाय सन्निकर्ष १३७
समवायिकारण ३७३
समवायिकारण केवल द्रव्य ३१८
समवायिकारण द्रव्य, कार्यमात्र का ३७
समवेतसमवाय सन्निकर्ष १३८
समाज में दोष तथा अदोष २२४
समाधिजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान २६३-६४
साऊण्ड ४१०
साधारण व्यक्तियों में वर्ताव २१४
साध्य-साधनभाव प्रत्येक प्रमाण में ३०१
सामयिकाभाव क्या है २६२
सामान्य का ज्ञान द्रव्यघटित सन्निकर्ष से २७५
सामान्य [जाति] का स्वरूप ५४
सामान्यतोदृष्ट लिङ्ग से वायु का अनुमान ८३
सामान्यतोदृष्ट हेतु से आत्मसिद्धि १४७
सामान्यविशेष का ज्ञान विशेषण-युक्त नहीं २७६
सिद्धदर्शन क्या है ३११
सुख का दुःख से भेद ३१३
सुखज्ञान के कारण १६७
सुख-दुःख ज्ञान नहीं ३१४-१७
सुवर्ण आदि में 'द्रवत्व' नैमित्तिक ७३
सुवर्णादि धातु और पञ्चभूत ४२६
सुवर्णादि धातु तैजस ४२७
सूर्य-किरणों में सात रंग ४२२
सोते व्यक्ति का चलना-फिरना १८२-८३
स्थितिज-ऊर्जा ४१४-१५

स्पर्श वायु का गुण ७१
स्पर्शवालों का गुण नहीं, शब्द ८८-८९
स्वर्शविशेष पृथिवी आदि का नहीं ७७
स्पर्श से वायु का अनुमान ७५
स्मृतिज्ञान के कारण ३०२
स्वप्न के अन्य निमित्त ३०७
स्वप्न में बाह्येन्द्रिय-प्रभाव ३०७-०८
स्वप्न में भविष्यत् का ज्ञान ३०८-०९
स्वप्न शुभाशुभसूचक ३०६
स्वप्न स्मृतिज्ञान है ३०२-०३
स्वप्नान्तिक का स्वरूप ३०५
स्वप्नान्तिक ज्ञान स्मृतिरूप ३०३-०४

ह

हस्त-कर्म के विभिन्न कारण १७८
हाथ में क्रिया कैसे १७८
हेतु के अर्थ में अन्य पद ३००
हेतु-साध्य का संबन्ध १२८-३०

ग्रन्थ-संकेत सूची

यजु०	यजुर्वेद
वा०	वार्त्तिक
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
श्वेता०	श्वेताश्वतर उपनिषद्
सं०	संवत् (विक्रमी)
सां० सू०	सांख्यसूत्र
साम०	सामवेद
सू०	सूत्र

ग्रन्थ-संकेत सूची

यजु०	यजुर्वेद
वा०	वार्त्तिक
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
श्वेता०	श्वेताश्वतर उपनिषद्
सं०	संवत् (विक्रमी)
सां० सू०	सांख्यसूत्र
साम०	सामवेद
सू०	सूत्र